॥श्रीः॥
व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
१९०

गोलपरिभाषा

(गोलशतकम्)

पण्डित सत्यदेव शर्मा

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

गोलपरिभाषा

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू. ए. जवाहर नगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली - 110007
दूरभाष : (011) 23856391, 41530902

प्रथम संस्करण 2016
पेज : 4+4+70
मूल्य : ₹ 50.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी - 221001

❉

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपाल मन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी - 221001

❉

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड़
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

ISBN : 978-81-7084-685-7

मुद्रक :
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	ग्रन्थ प्रयोजनम्	1
2.	गोलप्रशंसा	1
3.	गोलानभिज्ञगणकस्य स्थितिः	1
4.	गणितप्रशंसा	1
5.	वृत्त परिभाषा	2
6.	व्यासरेखा परिभाषा	3
7.	गोलपरिभाषा	4
8.	वप्रक्षेत्रपरिभाषा	5
9.	कक्षागोलपरिभाषा	5
10.	सप्तगोलपरिभाषा	7
11.	भूगोलस्वरूप परिभाषा	9
12.	खस्वस्तिकपरिभाषा	10
13.	पृष्ठीयकेन्द्रपरिभाषा	11
14.	महद्वृत्तलघुवृत्तपरिभाषा	12
15.	स्वपृष्ठस्थानपरिभाषा	15
16.	ज्योत्पत्तिपरिभाषा	15
17.	स्वनिरक्षदेशम्	17
18.	भूपरिधिमानम्	17
19.	स्पष्टभूपरिधिः ज्ञानम्	18
20.	लङ्कारेखा प्रदेशः	19
21.	मध्यरेखा	21
22.	देशान्तरम्	22
23.	लग्नपरिभाषा	22
24.	क्षितिजसमस्थानध्रुवादिप्रदेशः	23
25.	विषुवद्द्युरात्रवृत्तयोर्लक्षणम्	24
26.	गोलविभागायनलक्षणञ्च	25
27.	कदम्बस्थानम्	26
28.	क्रान्तिवृत्तम्	26
29.	परमक्रान्त्यंशाः	27
30.	विमण्डलवृत्तज्ञानम्	28
31.	अन्याक्रान्तिज्याक्रान्तिज्ययोः लक्षणम्	28
32.	भस्वरूपम्	30
33.	ध्रुववृत्तम्	31
34.	याम्योत्तरनिरक्षखस्वस्तिक-योर्लक्षणम्	31
35.	निरक्षक्षितिजोन्मण्डलम् च	32
36.	समस्थानपूर्वापरवृत्तम् च	32
37.	उपवृत्तम्	32
38.	अक्षांशस्थाम्	33
39.	अक्षांशज्ञानम्	34
40.	शरपरिभाषा	35
41.	पूर्वापरयाम्योत्तरसूत्रयोः	36
42.	उदयास्त क्षितिजम्	36
43.	उदयास्तव्याससूत्रौ	37
44.	अयनवृत्तम्	37

आशा करता हूँ छात्रों तथा अध्यापकों दोनों को यह ग्रन्थ नवीनरूप में शुद्ध तथा स्पष्टता के साथ प्राप्त होगा, जिससे सभी पाठकों को अत्यधिक लाभ होगा।

'गोलपरिभाषा' नाम से प्रकाशित ग्रन्थ का ही यह नाम 'गोलशतकम्' नाम से प्रकाशित किया जा रहा है, इसमें 100 श्लोक हैं।

भवदीय

पं. सत्यदेव शर्मा

ई-116 मुरलीपुरास्कीम, जयपुर (राज.)

◆ ◆ ◆

भूमिका

सिद्धान्तगणित आकाशगोल में की जाती है। गोल की गणना समतल में वृत्त, त्रिभुज, चतुर्भुज, सरलरेखा रूप में की जाती है। ग्रहादि की स्थिति गोल पर ही होती है तथा उनकी गति गोलाकार ही होती है। ग्रहादि के इन गोलाकार भ्रमण पथों को सरलरेखा में परिवर्तित किया जाता है, जिसको चाप-ज्या कहा जाता है। ग्रहादि के गोलाकार पथ में उनकी गति इत्यादि की गणना करने के लिए और भी अन्य गोलाकार वृत्तादि की कल्पना की जाती है, जिनको विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। उन सभी की स्थिति व स्वरूप को समझने तथा उपयोग करने के लिए खगोल में उनको जानने के लिए आवश्यक बातें इस लघुग्रन्थ में बताई गई हैं। ये वे आधारभूत संज्ञाओं की जानकारियाँ है, जिनको सिद्धान्तगणित को सरलता से समझने के पूर्व जानने तथा समझने की आवश्यकता है।

'गोलपरिभाषा' नाम से जो ग्रन्थ प्रकाशित है तथा पाठ्यक्रम में स्वीकृत है, यह विभिन्न सिद्धान्तग्रन्थों से, गोल के आधारभूत ज्ञान से संबंधित पारिभाषिक श्लोकों को संकलित करके बनाया गया लघुग्रन्थ है। मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में उनको क्रमशः व्यवस्थित कर के लिखा है, उसमें पूर्व में प्रकाशित कुछ अधूरे श्लोकों को पूर्णरूप दिया है तथा कुछ अन्य आवश्यक परिभाषाओं को इसमें सम्मिलित करके इसको पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया है। श्लोकों की संख्या को पूर्ण शतक कर दिया गया है।

श्लोकों के शुद्ध तथा पूर्ण अर्थ स्पष्ट करके लिखे हैं तथा उनकी संस्कृत में भी व्याख्या हिन्दी के साथ पूर्ण विस्तार तथा स्पष्ट रूप में की है, जिससे उन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान स्पष्ट तथा सरल रूप में हो सके। पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों में इनके अर्थ तथा व्याख्यायें कई स्थानों पर अशुद्ध की गई हैं इन्हें सही अर्थ तथा सही स्वरूप में इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। गोल संबंधी अन्य अतिरिक्त सामग्री इसमें नई जोड़ी गई है।

45. दृङ्मण्डलम्	38	58. चरस्वरूपं दिवारात्रिमानं च	50
46. दृक्क्षेपवृत्तम्	38	59. सौम्ययाम्यगोलक्रमेणदिवस-रात्रि व्यवस्था	51
47. नतांशोन्नतांशयो ज्ञानम्	40	60. व्यतिपातपरिभाषा	52
48. दग्गतिदृक्क्षेपौ	40	61. अक्षक्षेत्राणि	52
49. आक्षायनवलनौ	41	62. लङ्कोदयासुज्ञानम्	54
50. दृक्कुर्मप्रयोजनम्	43	63. खकक्षाप्रमाणम्	55
51. नतिलम्बनम् च	43	64. साधारणक्षितिजम्	56
52. दृक्कुजसूत्रम्	45	65. परनीचपरोच्चगोलकथनम्	56
53. पलभा	46	66. चापीयजात्यत्रिभुजलक्षणम्	56
54. शङ्कुस्थानम्	47	**खगोलीयनिर्देशांकपद्धतयः**	**58**
55. दिगंशाग्राऽक्षांशक्रान्त्यंशाः	47	**गोलसम्बन्धि विशेषनिष्कषानि**	**63**
56. अग्राक्रांतिज्याकुज्याचरज्याः	49	**श्लोकानुक्रमणिका**	**66**
57. हृति-अन्त्येः	49		

◆ ◆ ◆

गोलपरिभाषा

ग्रन्थप्रयोजनम्

उडुग्रहाणां भ्रमणं न तुल्यं सर्वत्र भूगोलनिवासिनां हि।
तत्तत्त्वबोधावगतिस्तु गोलादतः स्फुटं गोलमिहाभिधास्ये।।1।।

गोलप्रशंसामाह

यद्वदिन्दुरहिता न शर्वरी भाति शीलरहिता न चाङ्गना।
ब्राह्मणश्च न चरित्रवर्जितस्तद्वदेव गणको ह्यगोलवित्।।2।।

गोलानभिज्ञं गणकमुपहसति

अविदितपदलक्ष्यो वावदूकोऽपि यात-
श्चतुरबुधसभायां यद्वदायाति हास्यम्।
ग्रहगणितविदेवं गोलतत्त्वानभिज्ञो
गणकसदसि विद्वच्चक्रवक्रोक्तिहीनः।।3।।

गणितप्रशंसामाह

अविदितगणितो न वेत्ति गोलं ग्रहगतिमेव न वेत्त्यगोलवेत्ता।
य इह गणितगोलयोरवेत्ता स कथमवैत्यबुधो गतिं ग्रहाणाम्।।4।।

यहाँ कहा गया है कि भूगोलनिवासियों को सर्वत्र नक्षत्र तथा ग्रहादि का भ्रमण समान रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है। ग्रहनक्षत्रों के भ्रमण की विषमता के तत्त्व को जानने के लिए जिस गोल के ज्ञान की आवश्यकता है वह यहाँ कहते हैं।

जिस प्रकार से चन्द्रमा के बिना रात्रि, शील के बिना स्त्री, ब्राह्मण चरित्र के बिना शोभित नहीं होता उसी प्रकार गोल के ज्ञान के बिना गणक शोभित नहीं होता। व्याकरण के ज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति विवादशील होने पर भी चतुर-बुद्धिमान लोगों की सभा में जिस प्रकार से उपहास का पात्र होता है, उसी प्रकार से गोल के ज्ञान से अनभिज्ञ गणितज्ञ भी, ज्ञानियों की सभा में निन्दा वचनों तथा हास्य का पात्र होता है।

संस्कृत- उडुग्रहाणामिति। हि यस्मात् कारणात् भूगोलनिवासिनां पृथ्वीतले वसतां जनानां मध्ये उडूनां नक्षत्राणां च भ्रमणं सर्वत्र तुल्यम् एकरूपं न भवति। तत्तत्त्वबोधावगतिस्तु ग्रहनक्षत्राणां भ्रमणवैषम्यस्य यस्तत्त्वबोधः परमार्थज्ञानं तदवगतिः गोलात् गोलाध्यायात् भवति। अत इहास्मिन् ग्रन्थे स्फुटं निःसंशयप्रतिपादं गोलाध्यायं कथयामि।

यद्वत् शर्वरी रात्रिः इन्दुरहिता चन्द्रमसा हीना न भाति न शोभते। शीलरहितादुःशीला अङ्गना स्त्री च न भाति। चरित्रवर्जितो दुश्चरित्रो ब्राह्मणश्च न भाति तद्वदेव अगोलवित् गोलानभिज्ञो गणकोऽपि न भातीत्यर्थः। एवमेव लल्लोऽपि-

''शशधरकिरणैर्विना प्रदोषं कुच रहितं ललनाजनस्य वक्षः।
मधुररमविवर्जितं च भोज्यं न किमपि गोलविवर्जितं च तन्त्रम्।।'' इति

अविदितपदलक्ष्य इति–वावदूको विवादशीलोऽपि अविदितपदलक्ष्यः व्याकरणान–भिज्ञः चतुरबुधसभायां यातः प्राप्तो यद्वत् उपहासमायाति प्राप्नोति एवं तथैव गोलतत्त्वानभिज्ञः ग्रहगणितवित् विद्वच्वक्रवक्रोक्तिहीनः विदुषां समूहस्य या वक्रोक्तिः काकूक्तिनिन्दावचनं तेन हीनोऽनभिज्ञः हास्यं यातीतिः एवमेव भास्कराचार्यः–

''वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्मयात् पटुबटुभ्रूभङ्गवक्रोक्तिभिः।
हीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलनभिज्ञस्तथा
ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपंञ्चोक्तिभिः।।'' इति

अविदितगणितः गणितानभिज्ञः गोलं न वेत्ति। अगोलवेत्ता गोलानभिज्ञः ग्रहगतिमेव न वेत्ति। य इह गणितगोलयोरुभयोरपि अवेत्ताऽज्ञाता सोऽबुधो मूर्खः ग्रहाणां गतिं कथं केन प्रकारेणावैति जावाति। कथमपि न जानातीत्यर्थः।

वृत्त परिभाषा–

व्यासार्धान्तरिता केन्द्रात् या रेखा वक्रगाभवेत्।
समन्ततश्च तद्वृत्तं वलयं मण्डलं च तत्।।5।।

भाष्य– केन्द्र स्थान से वृत्त के व्यासार्ध तुल्य दूरी पर जो वक्र चापाकार रेखापथ केन्द्र के चारों ओर समान दूरी पर बनता है, वह वलय, मण्डल अथवा वृत्त होता है।

टिप्पणी– यह श्लोक सिद्धान्ततत्त्वविवेक के स्पष्टाधिकार का 25–1/2 है।



संस्कृत– केन्द्रात् या परितो व्यासार्धन्तरिता वक्रगा चापाकारा रेखा भवेत् तत् वृत्तं, वलयं, मण्डलं च कथ्यते।

'चित्रानुसार कोई इष्ट बिन्दु केन्द्र **के** मान कर इष्टवृत्त की त्रिज्या तुल्य दूरी **त** पर स्थित बिन्दु अथवा पैनसिल (पैन) इत्यादि को धागे से बांध कर, केन्द्र स्थान **के** पर उसका दूसरा छोर स्थिर करके, **त** बिन्दु को चारों ओर घुमाने से जो चापरूपा वक्राकार क्षेत्र बनता है वह वृत्त होता है। इस पर स्थित प्रत्येक बिन्दु की केन्द्र **के** से दूरी सदा त्रिज्या तुल्य होती है तथा यह वृत्त समतल में दो आयामी होता है। यह त्रिआयामि होने पर पूर्वोक्त, गोल–रूप होता है।

इसी प्रकार गोल में स्थित किसी महद्वृत्त अथवा लघुवृत्त का केन्द्र-पृष्ठकेन्द्र सदा उस पर स्थित सभी बिन्दुओं से समान दूरी पर होता है।



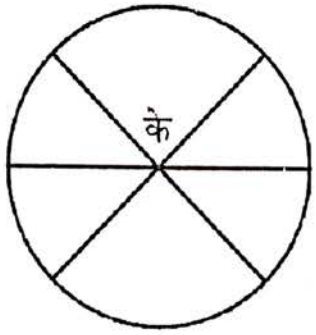
चित्रानुसार ब त प व गोल में स्थित किसी वृत्त व स द त अ का पृष्ठकेन्द्र **ब**, इस पर स्थित किसी भी बिन्दु **अ व त स द** इत्यादि से समान दूरी अ ब= ब व= ब स = ब द = ब त पर स्थित होता है। इसी प्रकार महद्वृत्त के लिए भी होता है।

व्यासरेखा-

वृत्तमध्यस्थिता या स्यादृजुरेखा च केन्द्रगा।
ज्ञेयः स एव विष्कम्भो व्यासश्च वृत्तमध्यगः।।6।।

भाष्य- वृत्त के मध्य में जो सीधी रेखा वृत्तकेन्द्र से होकर गत होती है तथा वृत्त की परिधि पर दोनों ओर लगती (मिलती) है। वही वृत्त के मध्यगत व्यास तथा विष्कम्भ नाम से जाना जाता है।

संस्कृत- वृत्तकेन्द्रगता या रेखा वृत्तपरिधिलग्ना उभयोर्दिशी भवेत्सैव व्यासो वा विष्कम्भश्चोच्यते। चित्र में दर्शाये अनुसार वृत्त के केन्द्र **के** से गत वे सभी सीधी रेखायें उस वृत्त के व्यास अथवा विष्कम्भ नाम की होती हैं, जो वृत्त परिधि के एक स्थान पर लगकर दूसरे स्थान पर पुनः लगती हैं।



वृत्त की भांति ही किसी भी गोल का व्यास अथवा विष्कम्भ भी होती है। वृत्त के केन्द्र से गत कोई भी सीधी रेखा गोलपृष्ठ को जिन दो स्थानों पर मिलती है, उनके मध्य की दूरी गोल का व्यास होता है।

गोल मे स्थिति अहोरात्रवृत्तों के अर्धव्यास का द्युज्या नाम होता है।

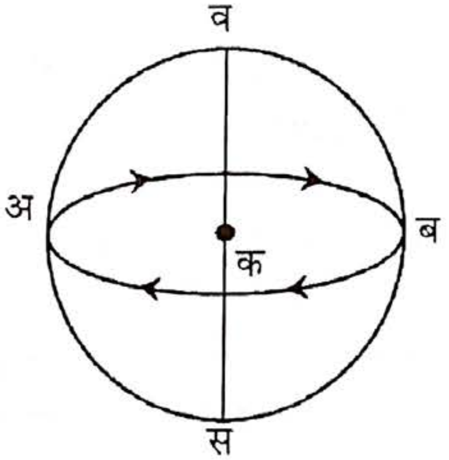
यह श्लोक सि.त. वि. के. स्पष्टा. का श्लोक- $26-\frac{1}{2}$ ही है।

गोलपरिभाषा-

विष्कम्भोपरिवृत्तार्द्धे भ्राम्यमाणे तु सर्वतः।
गोलक्षेत्राभिधं ज्ञेयं गोलविद्भिर्मुनीश्वरैः।।7।।

भाष्य- वृत्तव्यास के ऊपर वृत्तार्ध को चारों ओर घुमाने से बनने वाला क्षेत्र गोल नाम का होता है। यह गोल के ज्ञानियों के द्वारा होता है।

टिप्पणी- चित्र में अ व ब स एक वृत्त क्षेत्र है। व स इसका विष्कम्भ (व्यास) है। व ब स इसका वृत्तार्ध पृष्ठ भाग है। इसको, विष्कम्भ व स को स्थिर करके, इसके चारों ओर घुमाने से गोल (पृष्ठ) प्राप्त होता है। इसको ही यहाँ गोल कहा है। गोल (अन्दर से खाली) होता है। तथा वृत्त, धरातल में रेखा रूप में होता है। यहाँ अन्दर से खालीगोल कहना ही अभिप्रेत है।



सिद्धान्ततत्त्वविवेक के स्पष्टाधिकार के क्षेत्रमिति अध्याय में भी गोल के लक्षण कहे हैं। यथा-

"एवं केन्द्राच्च यत्पृष्ठं सर्वं व्यासार्धमानतः।
समान्तरस्थितं गोलः स एवाद्यैरुदाहृतः।।28।।" इति

यहाँ कहा है कि केन्द्र से जिस पृष्ठ के सभी स्थान समान दूरी, व्यासार्धमान तुल्य पर स्थित होते हैं, उन पृष्ठों को गोल संज्ञक कहते हैं।

यह बात स्पष्ट है कि किसी गोल के पृष्ठ पर स्थित प्रत्येक बिन्दु (स्थान) उसके केन्द्र से व्यासार्ध तुल्य समान दूरी पर स्थित होता है।

गोल लक्षण को म.म. सुधाकर द्विवेदी जी ने इस प्रकार कहा है। यथा-

"व्यास्योपरि वृत्तार्धभ्रमणेन समन्ततः।
गोलसंज्ञं घनक्षेत्रं विद्भिस्तत्समुदाहृतम्।।" इति

यहाँ सुधाकरजी ने ठोस घन क्षेत्र को कहा है, जिसके अनुसार यहाँ दिये गये चित्र में अर्धवृत्त स ब व क स को विष्कम्भ व क स के चारों ओर घुमाने से गोल संज्ञक ठोस घन क्षेत्र बनता है। यह स्पष्ट है।

संस्कृत- एवं केन्द्रात् नियतैकबिन्दोः परितः सर्वं यत्क्षेत्रपृष्ठं व्यासार्धमानतः समेऽन्तरे स्थितं च चाद्यैर्गोलसंज्ञ उदाहृतः कथितः। अर्धवृत्तं स्वव्यासरेखोपरि भ्राम्यमाणं गोलमुत्पादयति।

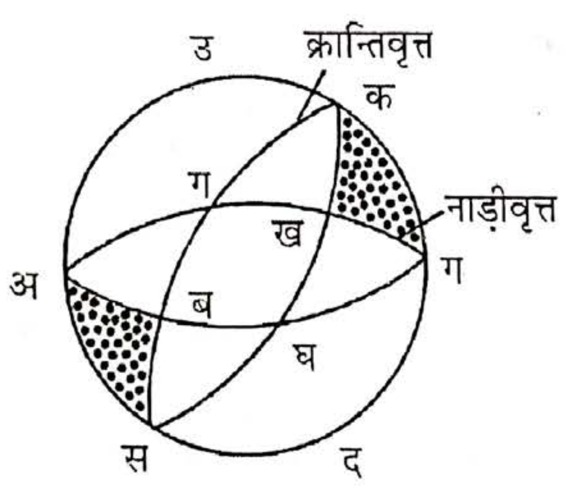
वप्रक्षेत्रपरिभाषा-

गोलोपरिमहद्वृत्तद्वयस्यान्तर्गतं बुधैः।
वप्रक्षेत्रं समाख्यातं नवीनैश्शास्त्रविद्वरैः।।8।।

भाष्य- गोल के ऊपर दो महद्वृत्तों के अन्तर्गत बनने वाले क्षेत्र को नवीन गणित शास्त्र के विद्वानों ने वप्रक्षेत्र नाम से कहा है।

टिप्पणी- गोल के ऊपर बनाया गया कोई वृत्त महद्वृत्त तब होता है जब उसका केन्द्र गोल का केन्द्र ही होता है। ऐसा नहीं होने पर वह लघुवृत्त नाम का होता है। उन्मण्डलवृत्त, क्षितिजवृत्त, विषुवद्वृत्त, दक्षिणोत्तरवृत्त, क्रान्तिवृत्त इत्यादि वृहद्वृत्त के कुछ उदाहरण हैं। गोल पर दो बृहद्वृत्तों के बीच में बनने वाला क्षेत्र गोल के पृष्ठ पर ही होता है जिसे वृत्तपृष्ठक्षेत्र अर्थात् वप्रक्षेत्र कहा है।

चित्र में बताये अनुसार दो वृहद्वृत्तों नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिदृत के द्वारा गोलपृष्ठ पर बनने वाले क्षेत्र अ ब स तथा क ख ग बनते हैं, इन्हें बिन्दु युक्त क्षेत्र द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार क उ अ ग क तथा ग द स घ ग क्षेत्र भी इन्हीं बहद् वृत्तों द्वारा बनते हैं।



लघुवृत्तों के अन्तर्गत के क्षेत्र उपयोगी नहीं है।

संस्कृत- गोलोपरि द्वयोर्महद्वृत्तयोरन्तर्गते क्षेत्रं नवीनाचार्यैः वप्रक्षेत्रं समुद्भवितम्।

कक्षागोलपरिभाषा-

एवमाकाशगोलास्ते पवनाख्या ग्रहाश्रयाः।
अधोऽधः क्रमतोज्ञेयाः शनेश्चन्द्रावधि स्थिताः।।9।।

आदौ शनिर्गुरुस्तस्मात्ततो भौमास्ततो रविः।
ततः शुक्रो बुधस्तस्मात् तत इन्दुरिति स्फुटम्।।10।।

भाष्य– आकाश स्थित वे गोल प्रवह नाम की वायु से संचालित ग्रहों के आश्रय स्थल हैं, जिनमें ये ग्रह एक के नीचे एक क्रमशः शनैश्चर से लेकर चन्द्रमा तक स्थित जाने जाते हैं। सर्वप्रथम शनि, उससे आगे गुरू, उसके आगे मंगल, उसके आगे सूर्य, उसके आगे शुक्र, उससे आगे बुध, तथा उससे आगे चन्द्रमा स्थित होता है।

टिप्पणी– यहाँ आकाश गोल में सात ग्रहों सूर्यादि की स्थिति, स्वस्व कक्षाओं में क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर बताई है, जिनमें वे प्रवहवायु के द्वारा स्वस्व गतियों से भ्रमण करते रहते हैं। शनि से लेकर चन्द्रमा तक सबसे ऊपर से सबसे नीचे इनकी कक्षायें अर्थात् इनके भ्रमणपथ जिनमें ये निरन्तर भ्रमण करते हैं, एक के नीचे एक शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा क्रम से स्थित हैं।

सिद्धान्तशेखर के गोलाध्याय में श्रीपति ने इनको स्पष्ट करके, इनकी गतियों की दिशा के साथ कहा है। यथा–

प्रवहवायुना पश्चिमाभिमुखं गच्छतामपि ग्रहाणां पूर्वगति दृष्टान्तेन दृढ़ीकरोति–
ज्योतिश्चक्रं प्रवहमरुता भ्राम्यते प्रत्यगेतत्
तत्स्था शश्वद्गनगतयो भान्ति यान्तस्तथैव।
गच्छन्त्येते पुनरिह सदा प्राङ्मुखाः कुम्भकर्त्तृ–
भ्राम्यच्चक्रोपरिगतचलत्कीटवत् सर्व एव।।53।।

यहाँ कहा है कि, प्रत्यक्षरूप में ज्योतिषचक्र अर्थात् भमण्डल प्रवाहवायु के द्वारा पश्चिमाभिमुख भ्रमण करता है। उस प्रवहवायु के अन्तर्गत आकाशगत ग्रह अनवरत उसी प्रकार पश्चिमाभिमुख भ्रमण करते हुए प्रतीत होते हैं। लेकिन ये सभी ग्रह सदा पूर्वाभिमुख ही भ्रमण करते हैं। यह कैसे होता है, इसके लिए दृष्यान्तरूप में कहा है कि जिस प्रकार से कुम्हार के चक्र पर, चक्रभ्रमण की दिशा से विपरीत दिशा में चलता हुए कीट भी चक्र की दिशा में ही चलता हुआ प्रतीत होता है।

संस्कृत– एतत् प्रत्यक्षरूपं ज्योतिश्चक्रं भमण्डलं प्रवहमरुता प्रवहवायुना प्रत्यक् पश्चिमाभिमुखं भ्राम्यते। तत्स्थाः प्रवहान्तर्गताः गगनगतयो ग्रहाः शश्वत् अनवरतं तथैव पश्चिमाभिमुखमेव यान्तो भान्ति। पश्चिमाभिमुखमेव ग्रहाश्चलन्तीति लोकैः प्रतीयत इति भावः। पुनरिह एते सर्व एव ग्रहाः सदा प्राङ्मुखा गच्छन्ति। क इव? कुम्भकर्त्तभ्राम्यच्चक्रो-परिगतचलत्कीटवत् कुम्भकाराण भ्रमतश्चक्रस्योपरि गताश्चक्रविपरीतदिशं चलन्तः कीटा इव।

तथा च मध्यमाध्याये! उक्तया कक्षया ग्रहकक्षामानेनुमाह–
"चक्रैर्यस्य व्योमकक्षा विभक्ता तस्यैव स्यात् खेचरस्य स्वकक्षा"।।60–$\frac{1}{2}$।।

अर्थ– आकाश कक्षा जिसमें ग्रहों के भगणमार्ग विभक्त हैं वही उनकी स्वकक्षा होती है।

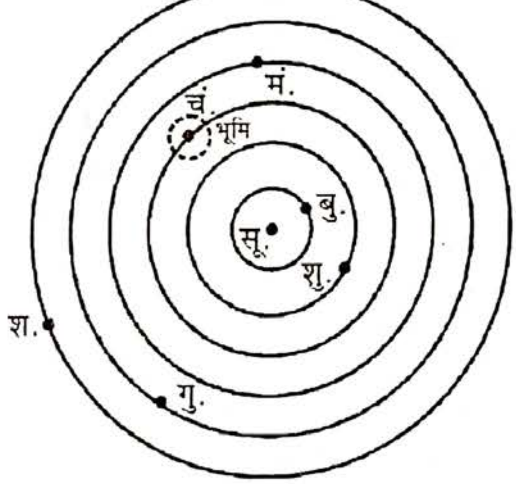
संस्कृत- व्योमकक्षा यस्य खेचरस्य चक्रैर्भगणैर्विभक्ता सा तस्यैव स्वकक्षा भवतीति।

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में ग्रहों की स्थिति क्रमशः अधोऽधः कही है। यथा-

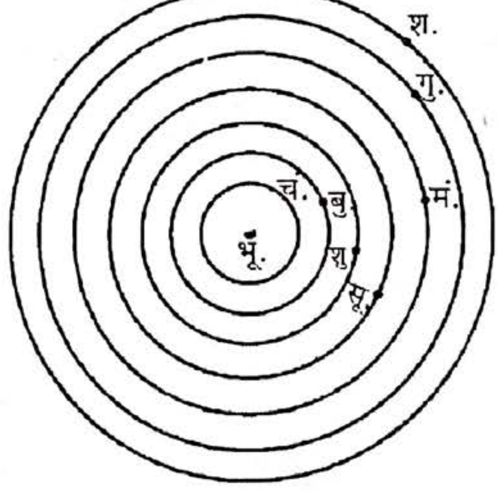
"ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा।।30।।
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्थाः सिद्धा विद्याधरा घना।।31।।" इति

यहाँ पूर्व श्लोक- 3-4 की व्याख्या में सि.शे. का जो श्लोक-7 उद्धृत किया है उसमें पृथ्वी से ऊपर क्रमशः स्थित ग्रहों की कक्षायें इसी क्रम में कही हैं।

नवीन मतानुसार ग्रह कक्षाक्रम



प्राचीन मतानुसार ग्रह कक्षाक्रम



सप्तगोलपरिभाषा-

ग्रहाणां गोलकाः सप्त तानन्यांश्च वदाम्यहम्।
स्वस्वशैघ्र्याख्यमन्दाख्यविपाताख्यभपातजाः।।11।।
परोच्चपरनीचाख्यगोलाः स्पष्टक्रियोचिताः।
तत्सर्वाश्रय एवैको ग्रहगोलोऽस्ति खेमहान्।।12।।

भाष्य- ग्रहों के भ्रमण करने के सात (प्रकार के) गोल है। उन भिन्न-भिन्न को मैं कहता हूँ। अपने-अपने, शीघ्रनामक, मन्दनामक, विपातनामक, भपात, परमोच्च व परमनीच नाम के गोल तथा जिस गोल में उनको उचित रूप से स्पष्ट करना योग्य होता है, इन सभी का आश्रय रूप एक ही ग्रहगोल होता है, जो वृहद् आकाश है।

टिप्पणी- यहाँ कथित दोनों श्लोक सिद्धान्ततत्त्वविवेक के मध्यमाधिकार के श्लोक-82-83 हैं। इनमें ग्रहों के भ्रमण के सात गोल (1)व (2) शीघ्र तथा मंद प्रतिवृत्त (3) व (4) तथा भपात (5) व (6) परोच्च तथा पर नीच तथा (7) कक्षागोल कहे हैं।

सात ग्रहों के यहाँ सात प्रकार के गोले होते हैं जिनमें वे भ्रमण करते हैं। इनमें सर्वप्रथम सातों सूर्यादि ग्रहों के सात मन्दनीचोच्च वृत्त होते हैं, यह एक प्रकार के वृत्त हैं। इसके पश्चात् भौमादि पाँच तारा ग्रहों के शीघ्रनीचोच्च नाम के वृत्त होते हैं, क्योंकि भौमादि पाँच ग्रहों के ही शीघ्रोच्च होते हैं। ये दूसरे प्रकार के वृत्त हैं। इन्हीं सात तथा पाँच वृत्तों के प्रतिवृत्त होते हैं। अर्थात् सातों ग्रहों के साथ मन्दप्रतिवृत्त तथा शीघ्रप्रतिवृत्त पाँच होते हैं। ये तीसरे प्रकारके वृत्त हैं। ग्रहों के वित्रिभलग्न के ऊपर उनके दृग्मण्डल होते हैं जिनको दृष्टि मण्डल भी कहते हैं, अपमण्डल इनके क्रान्तिमण्डल अथवा कक्षामण्डल नाम के होते हैं। इस प्रकार से ये सूर्यादि सात ग्रहों के 21 मण्डल होते हैं। इसी प्रकार सूर्य के अतिरिक्त चन्द्रादि ग्रहों के छः स्व-स्व कक्षामण्डल होते हैं। इन सब का योग 51 संख्यक चलवृत्त अथवा चलमण्डल होते हैं। इन वृत्तों को यहाँ सात प्रकार के कहा है। ग्रहों के कक्षावृत्त जहाँ क्रान्तिवृत्त को काटते हैं, उन बिन्दुओं को उनके विपात या पात कहते हैं, भपात तथा विपातगोल भी ग्रहों के भ्रमण प्रदेश होते हैं।

इन चलवृत्तों के अतिरिक्त पाँच स्थिरवृत्त होते हैं। पूर्वापर मण्डल, दक्षिणोत्तर मण्डल ये क्रमशः सममण्डल तथा योम्योत्तरवृत्त नाम के होते हैं। क्षितिजवृत्त तथा विषुवद्वृत्त अथवा नाड़ीवृत्त तथा उन्मण्डल, ये पाञ्च वृत्त, स्थिरवृत्त, ग्रह तथा नक्षत्रों के होते हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में गोलवर्णनाध्याय में इनको कहा है देखें सिद्धान्तशेखर की मेरे द्वारा कृत टीका।

''मन्दोच्चनीचवलयानि भवन्ति सप्त
शैघ्राणि पञ्च च तथा प्रतिमण्डलानि।
दृक्क्षेपदृष्ट्यपमजानि च खेचराणा-
मर्कं विनैव खलु षट् च विमण्डलानि।।38।।
पञ्चाशदेकसहितानि च मण्डलानि
पूर्वापरं वलयमुत्तरदक्षिणं च।
क्ष्माजं तथा विषुवदुद्वलयाभिधाने
पञ्च स्थिराणि कथितान्युडुखेचराणाम्।।39।।'' इति

इसी प्रकार अन्याचार्यों ने भी कहा है।

संस्कृत- मन्दोच्चनीचेति-खेचराणां मन्दोच्चनीचवलयानि मन्दनीचवृत्तानि सप्त भवन्ति। शैघ्राणि नीचोच्चवृत्तानि पञ्च भवन्ति। भौमादिपञ्चकानामेव शीघ्रोच्चत्वात् पञ्चैव भवन्तीति भावः। तथा तत्क्रमेणैव सप्तपञ्चसंख्या क्रमणे प्रतिमण्डलानि प्रतिवृत्तानि। यथा मन्दप्रतिवृत्तानि सप्त। शीघ्रप्रतिवृत्तानि पञ्च। दृक्क्षेपदृष्ट्यपमजानि मण्डलानि दृक्क्षेपमण्डलं ग्रहस्य वित्रिभलग्नो परि दृग्मण्डलम्। दृष्टिमण्डलं नाम ग्रहस्य दृग्मण्डलम् अपमण्डलं क्रान्तिमण्डलमर्थात् कक्षा मण्डलम्। एवं सप्तानां रव्यादिग्रहाणां कक्षामण्डल-दृग्मण्डल-दृक्क्षेपमण्डलानीति तान्येकविंशति भवन्ति। अर्कं विनैवेति चन्द्रादीनां विमण्डलानि षट्।

एवं सर्वेषां योग एकपञ्चाशत संख्यकानि मण्डलानि चलाख्यानि। पूर्वापरं वलयं उत्तरदक्षिणं वलयं सममण्डलं याम्योत्तरमण्डलं चेत्यर्थः। क्ष्माजं क्षितिजवृत्तं विषुवद्वलयाभिधाने नाडीमण्डलमुन्मण्डलं चेत्यर्थः। एवं सममण्डल-याम्योत्तरमण्डल-क्षितिजमण्डल-विषुवन्मण्डलोन्मण्डलाख्यानि पञ्च मण्डलानि स्थिराणि उडुखेचराणां नक्षत्राणां ग्रहाणां चेत्यर्थः। स्थिराणि गदितानि।

भूगोलस्वरूपपरिभाषा-

मृदम्ब्वग्न्यनिलाकाशपिण्डोऽयं पाञ्चभौतिकः।
कपित्थफलवद् वृत्तः सर्वकेन्द्रेऽखिलाश्रयः।।13।।
स्थिरः परेशशक्त्यैव सर्वगोलादधः स्थितः।
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।।14।।

भाष्य- यह पृथ्वी पिण्ड, मिट्टी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश द्वारा निर्मित पञ्च भौतिक पिण्ड है। यह कपित्थफल के समान वृत्ताकार है, यह सभी (ग्रहादि) का केन्द्र है तथा सब का आश्रय रूप है। यह सभी पिण्डों के नीचे परमेश्वर की शक्ति से स्थिर होकर स्थित है।

टिप्पणी- ये दोनों श्लोक सि. तत्त्व.वि. के मध्यमाधिकार के श्लोक- 113-114 ही हैं।

संस्कृत- मृत्, मृत्तिका, अम्बु जलं, अग्नि, अनिलो, वायुः, आकाशश्चैतेषां पिण्डः समूहः, अत एव पाञ्चभौतिकः कपित्थफलवत् गोलाकारः एवं ब्रह्मसिद्धान्ते 'कपित्थाकारभूगोलमध्यगो मेरूपर्वतः।' इति अध्या. श्लोक-22, उक्तमः। सर्वकेन्द्रे भूकेन्द्रेऽखिल आश्रयो यस्य सः परेशशक्त्या एवं स्थिरः, सर्वगोलादधः स्थितः, अण्डस्य ब्रह्माण्डस्य समन्तात् सर्वप्रान्तावयवतो मध्ये वर्त्तमानः, ब्रह्मणो धारणात्मिकां परमां शक्तिं बिभ्राणः, न अन्य आधारो यस्य स नान्याधारोऽर्थादाधारहीनः भूगोलो व्योम्नि आकाशे तिष्ठति। परन्त्वाधुनिकाः लघुव्यासाधारोपरि तदर्धीकृतदीर्घवृत्तार्धभ्रमणेन जायमान पिण्ड इव भूपिण्डोऽस्तीति निर्णीतवन्तः।

सिद्धान्ततत्त्वविवेके अग्रिम श्लोकः यथा-

'बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।
नान्याधारोऽथ मूर्त्तश्चेत् तस्याधारोऽथ तस्य च।।115।।'' इति

पृथिवी गोलाकारेत्यतिप्राचीनं मतम् ऋग्वेदसंहितायामिदं सप्रमाणं व्याख्यातम्। यथा-

''चक्रणासः परीणाहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमाना।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण।।'' इति

(ऋ. सं.- 1-33-8)

द्रष्टव्य ममकृत सिद्धान्ततत्त्वविवेके भूमिकायामपि।

तथा 'आ' वत्तत्रापि सूर्योदयस्य असमकालत्वात् पृथिव्या समतलत्वं निराकृतमस्ति। यथा–

"आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिना श्लोकं देव: कृणुने स्वायधर्मणे।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुर्भिर्जगत्।।" इति
(ऋ. सं. 4-53-3)

सिद्धान्तशेखर के गोलाध्या में यहाँ कथित ही पृथ्वी की स्थिति कही है। यथा–

"विधुबुधसितसूयरिज्यपाङ्गिकक्षा–
वलयपरिवृतोऽसावृक्षकक्षोदरस्थ:।
मृदनिलजलतेजोगोलको वृत्त उर्व्या
धृत इह निजशक्त्या धारयिष्णु स्वभाव:।।7।।" इति

सूर्यसिद्धान्तादि में भूमि के कपित्थ फल जैसा ही कहा है। ऋग्वेद में भी इसी प्रकार भूस्थिति कही है।

संस्कृत– मृदनिलजलतेजोगोलक: असौ उर्व्या: वृत्त पाञ्चभौतिको भूमे: पिण्ड: उपर्युपरि स्थितै: चन्द्रबुधशुक्रसूर्यकुजगुरुशनीनां कक्षामण्डलै: परिवृत आवृत: ऋक्षकक्षाया नक्षत्रकक्षाया उदरस्थो मध्ये वर्त्तमानश्च धारयिष्णुस्वभाव: इह ऋक्षकक्षोदरे आकाशे निजशक्त्या धृत: स्थित इति।

अथ दृष्टान्तद्वारेण भूमेराकाशेऽवस्थानं दर्शयति–

"नभस्ययस्क्रान्तमहामणीनां मध्ये स्थितो लोह गुडो यथाऽऽस्ते।
आधारशून्योऽपि तथैव सर्वाधारो धरित्र्या ध्रुवमेव गोल:।।" इति

संस्कृत– यथा अयस्कान्तमहामणीनां चुम्बकानां मध्ये नभसि आकाशे स्थितो वर्तमानो लोहगुडो लोहगुटिका आस्ते तिष्ठति तथैव आधारशून्यो निराधारोऽपि धरित्र्या: पृथिव्या गोल: सर्वाधार: स्थावरजङ्गमानां सर्वेषामपि पदार्थानां जीवानां च आश्रयस्थानरूप: ध्रुवं सत्यमेवेति।

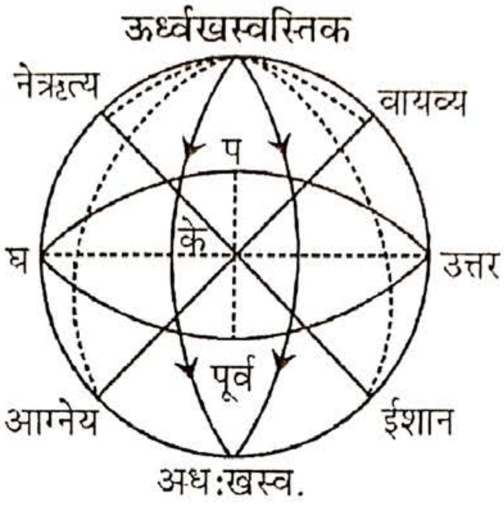
यहाँ चुम्बक रूपी महा आकाश के मध्य लोहे की गुटिका रूपी पृथ्वी को लोहचुम्बक न्यायारूप में स्वाधार से स्थिर होना कहा है, जो पृथ्वी सब का आश्रय है।

खस्वस्तिकपरिभाषा–

याम्योत्तरं प्रागपरं च कोणाभिधं तद्वृत्तचतुष्कयोगौ।
तयोश्च योऽत्यूर्ध्वगतस्तदूर्ध्वं खस्वस्तिकं चान्यदध: स्थितं च।।15।।

भाष्य– याम्योत्तरवृत्त, पूर्वापरवृत्त तथा (दो) कोणवृत्त नामक वृत्तों का अति ऊँचाई पर योग होता है वह ऊर्ध्व खस्वस्तिक तथा अन्य जो अति नीचाई पर योग बिन्दु होता है वह अध: स्वस्तिक होता है।

टिप्पणी– यह श्लोक सि. त.वि. के मध्यमा का श्लोक–307 ही है।



पूर्वापरवृत्त तथा याम्योत्तरवृत्त और चारों कोणो की परस्पर सम्मुख उपदिशाओं से गत दोनों कोणवृत्त बृहद्वृत्त होने से एक दूसरे को परस्पर आकाश में ऊपर तथा नीचे दो बिन्दुओं पर मिलते हैं। इनमें से हमारे सिर से ऊपर की ओर का मिलान बिन्दु ऊर्ध्व खस्वस्तिक तथा पृथ्वी के नीचे स्थित उसके सम्मुख उतनी ही दूरी पर स्थित अध: बिन्दु, अध: खस्वस्तिक नाम के होते हैं। यह स्पष्ट है ऊर्ध्वखस्वस्तिक दर्शक के शिर के ठीक ऊपर होता है तथा अध: स्वस्तिक उसके पैरों के ठीक नीचे पृथ्वी के नीचे होता है।

संस्कृत- याम्योत्तरवृत्तम्, पूर्वापरवृत्तम्, कोणवृत्तद्वयं चैवं वृत्तचतुष्काणां योगौ यौ भवतस्तयोर्मध्ये यो योगोऽत्यूर्ध्वगत: तत् ऊर्ध्व खस्वस्तिकं ज्ञेयम्। अन्यत् अर्थादत्यधोगतबिन्दु: अध: खस्वस्तिकमिति। भूकेन्द्रात् स्वपृष्ठस्थानंगतसूत्रमाकाशमध्ये यत्र लग्नं तत् तस्य खमध्यं खस्वस्तिकं वा उच्यते।

पृष्ठीयकेन्द्रम्-

यत्रिज्यावृत्ततस्तिर्यक्स्थितत्रिज्योत्थवृत्तयो:।
यत्रैक्यं तत्र तस्यास्ति नियतं पृष्ठकेन्द्रकम्।।16।।

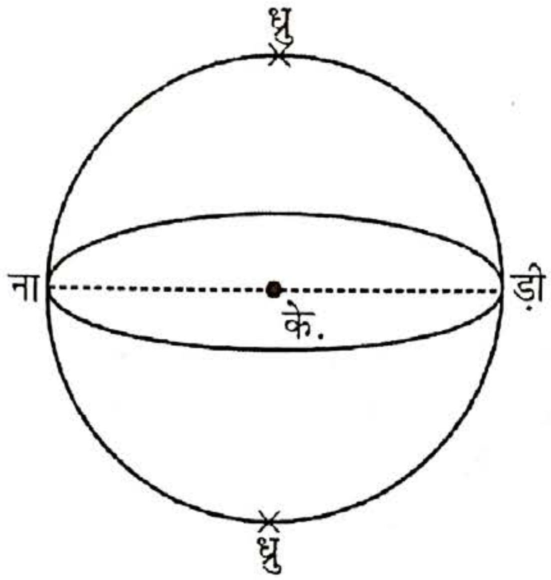
भाष्य- जिस वृत्त का पृष्ठकेन्द्र ज्ञात करना हो उस वृत्त के ऊपर दो बिन्दुओं को कल्पित करके, उन पर से जो दो वृहद्वृत्त होते हैं उन दोनों का जहाँ परस्पर मिलान होता है, उन स्थान पर उसके पृष्ठकेन्द्र स्थित होते हैं।

टिप्पणी – जैसे गोल पर किसी वृत्त ना ड़ी पर दो बिन्दु ना तथा ड़ी कल्पित करके दो महद्वृत्त बनाने पर वे दोनों ध्रु बिन्दु पर परस्पर मिलते हैं। अत: ध्रु बिन्दु ना ड़ी वृत्त के पृष्ठ केन्द्र प्राप्त होते हैं। जैसे नाड़ी वृत्त के पृष्ठकेन्द्र ध्रुव (उत्तर तथा दक्षिण) तथा क्रान्तिवृत्त के पृष्ठकेन्द्र कदम्ब (उत्तर तथा दक्षिण) इत्यादि हैं। यहाँ कथित श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक- 32 ही है। ये दोनों पृष्ठकेन्द्र छ: राशि अन्तर पर होते हैं। दो वृत्तों के मध्य जितना परम अन्तर (झुकाव) होता है उतना ही अन्तर उनके पृष्ठकेन्द्रों के मध्य में भी होता है।

संस्कृत – यस्य वृत्तस्य पृष्ठकेन्द्रमन्वेष्टव्यं तद्वृत्तबिन्दुद्वये केन्द्रे प्रकल्प्य, ताभ्यां ये महद्वृत्ते तयोरैक्यं यत्र तत्र तत्पूर्ववृत्तस्य ध्रुवं पृष्ठकेन्द्रकमस्तीति।

चैकस्मिन गोले यन्महद्वृत्तद्वयं भिन्नमस्ति, तयोरैक्यद्वयं यत्तत् अवश्यं षड्भान्तरस्थम्, ताभ्यां सम्पाताभ्यां त्रिभेऽन्तरे हि परमान्तरं स्यात्, स्पष्टमेतद्गोलविदाम्।

ध्रुवद्वयस्थं कदम्बद्वयस्थं च यद्वृत्तमर्थात् अयनप्रोतवृत्तम् तस्मिन् भवृत्तनाड़ी-वृत्तान्तरगता यथा परापमांशा: परमान्तररूपास्तथा हि तयोर्ध्रुवकदम्बयोरन्तरे च परापमांशा: अर्थात् यदेव वृत्तयो: परमान्तरं तदेव तयो: पृष्ठकेन्द्रान्तरमिति भाव:।

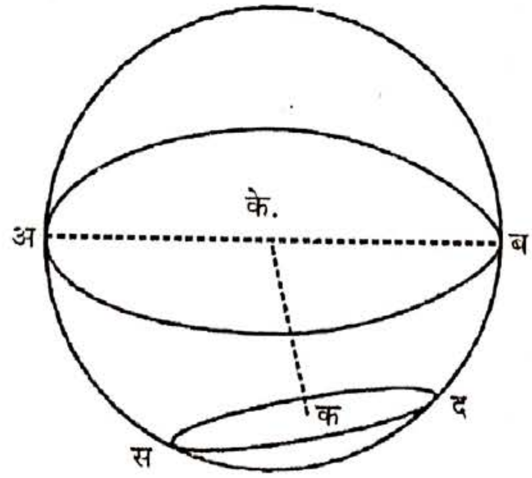


महद्वृत्तलघुवृत्तपरिभाषा–

ध्रुवमध्याद् वृहद्वृत्तं विषुवन्मण्डलाभिधम्।
तथाऽहोरात्रवृत्तानि लघुवृत्तानि सन्ति वै।।17।।

भाष्य– ध्रुव को केन्द्र मानकर जो (90अंश पर) वृत्त होता है वह वृहद्वृत्त, विषुवन्मण्डल नाम का होता है तथा जो (नक्षत्रादि के) अहोरात्रवृत्त हैं वे लघुवृत्त होते हैं।

टिप्पणी– यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्नाधिकार का श्लोक– 122 ही है।



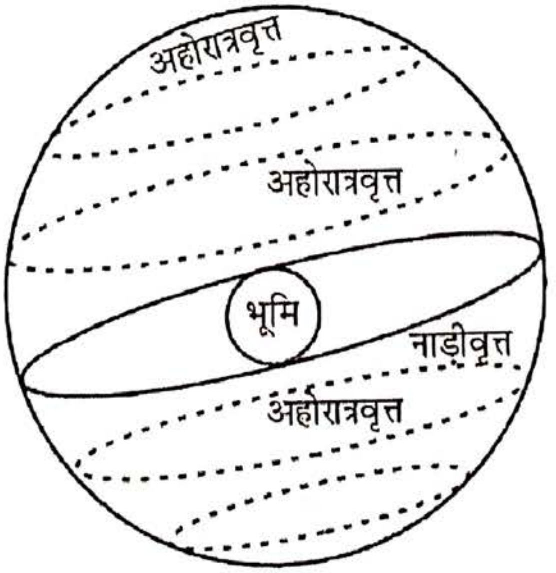
जिस किसी गोल के केन्द्र से गत कोई भी समक्षेत्र अर्थात् समतल उस गोल को जिस खण्ड़रूप में काटता है, वह खण्ड़रूप उस गोल पर वृहद्वृत्तरूप होता है। तथा इस वृहद्वृत्त का अर्धव्यास, गोल के अर्धव्यास के तुल्य ही होता है। यदि वह समक्षेत्र अर्थात् समतल उस गोल के केन्द्र में से होकर उस गोल को न काटे, अन्य स्थान से होकर काटे तो वह खण्डरूप लघुवृत्त नाम का होता है। जैसे यहाँ चित्र में खण्डरूप **अ ब** जो गोल के केन्द्र **के** में से होकर जा रहा है वह वृहदवृत्त है तथा खण्ड रूप **स द** जो अन्यत्र स्थान से गोल को काटता हुआ जा रहा है तथा जिसका केन्द्र **क** है, लघुवृत्तका है। वृहद् वृत्त **अ** ब का व्यास **अ के ब** उसका ही व्यास है।

यदि वृत्त के व्यास के दो अन्तिम बिन्दु **अ** तथा **ब** हो तो इनमें होकर असंख्य वृहद्वृत्त बनायें जा सकते हैं। जैसे उत्तर-दक्षिण ध्रुव जो खगोल के व्यास के दो अन्तिम बिन्दु है से होकर अनेक दक्षिणोत्तरवृत्त, वृहद्वृत्तरूप में बनाये जा सकते हैं।

वृहद्वृत्तों में, प्रधान वृत्त विषुवद्वृत्त है जो ध्रुवों को केन्द्र मानकर उनसे 90अंश दूरी पर बनाया गया है। दोनों ध्रुवों से इस प्रकार यह एक ही वृत्त बनता है।

तथा गौण महद्वृत्त वे हैं जो प्रधानवृत्त विषुवद्वृत्त के लम्बवत् तथा ध्रुवों से होकर जाते हैं। जैसे भूगोल में देशान्तर रेखायें होती हैं, वैसे वे याम्योत्तरवृत्त स्वस्व खमध्य से होकर जाते हैं। इन प्रमुख गौण महद्वृत्तों याम्योत्तरवृत्तों में से एक वृत्त प्रमुख रूप से निर्धारित करते हैं। जैसे लङ्का-उज्जयनि से होकर जानने वाला अथवा अब ग्रीनविच रेखा नाम से है।

प्रतिदिन नक्षत्र पूर्व से पश्चिम दिशाकी ओर जाते (भ्रमण) करते हैं, जिसको उनकी दैनिकगति कहते हैं उनके मार्गों को उनके अहोरात्रवृत्त कहते हैं नाडीवृत्त के निकवर्ति नक्षत्र तीव्रगति से स्व-स्व अहोरात्रवृत्तों में भ्रमण करते हैं। उत्तरी ध्रुव का क्षितिज नाडीवृत्त होता है। अत: नाड़ीवृत्त के समानान्तर अहोरात्रवृत्त ध्रुव स्थान के क्षितिज के समानान्तर होते हैं।

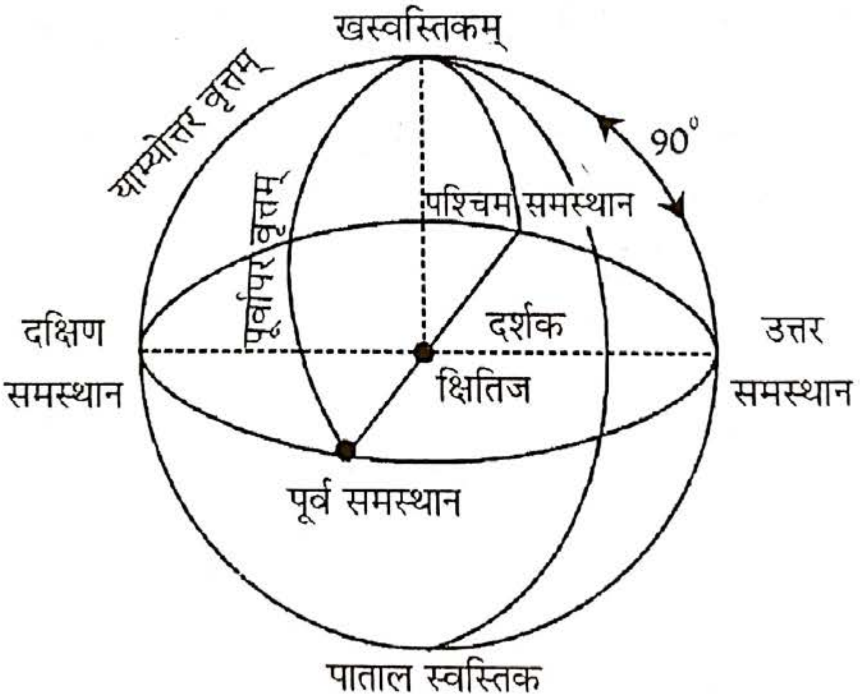


इसी प्रकार ग्रहों के अहोरात्रवृत्त होते हैं। नाड़ीवृत्त की तरह ही दोनों कदम्ब स्थानों से ९0 अंश पर बननेवाला एक ही वृत्त क्रान्तिवृत्त नाम से वृहद्वृत्त होता है।

वृद्धवृत्तों में क्रान्तिवृत्त, क्षितिजवृत्त, खस्वस्तिक तथा पाताल स्वस्तिक से गत वृत्त, उन्मण्डल, सममण्डल इत्यादि प्रमुख हैं।

संस्कृत- यस्य वृत्तस्य धरातलं गोलकेन्द्र भित्वा गच्छति सः महद्वृत्ताभिधम् तथा अन्यत्र स्थानगामितः लघुवृत्तम्च्यते। ध्रुव स्थनात् नवत्यंशान्तरे यद् वृत्त गतं तत् विषुवन्मण्डलमं कथ्यते। ध्रुवयोर्मध्ये तद् वृत्तं गोलकेन्द्रमतिक्रामन गच्छति साऽपि वृहद्वृत्तम् अभिधीयते। एते वृत्तानां धरातलं गोलकेन्द्रगामी वर्तते तथा अहोरात्रवृत्तानां धरातलं गोल केन्द्रात भिन्न स्थाने वर्त्तमानत्वात् ते लघुवृत्तानि भवन्ति वा गोलकेन्द्र भित्वा यस्य वृत्तस्य धरातलं न गच्छति तल्ल्घुवृत्तं कथ्यते।

नक्षत्राणि प्रतिदिनं पूर्वतः पश्चिमदिशायां गच्छन्ति। गतिरियं तेषां दैनन्दिनी गतिः कथ्यते। तेषां मार्गाश्च अहोरात्रवृत्तानि कथ्यन्ते। ध्रुवसमीपवर्तिनक्षत्राणि मन्दगत्या अहोरात्रवृत्तेषु भ्रमन्ति। नाड़ीवृत्तसमीपवर्तिनक्षत्राणि तीक्ष्णगत्या निजेष्वहोरात्रवृत्तेषु भ्रमन्ति। पार्थिवोत्तर ध्रुव स्थाने ध्रुवस्थानं खस्वस्तिके वर्तते, क्षितिजश्च नाड़ीवृत्तादभिन्नं भवति। अत एव नाडीवृत्तसमानान्तराण्यहोरात्रवृत्तानि क्षितिजसमानान्तराणि भवन्ति। अत एव उत्तरार्धवर्तिनक्षत्राणि सदोदितनक्षत्राणि भवन्ति।



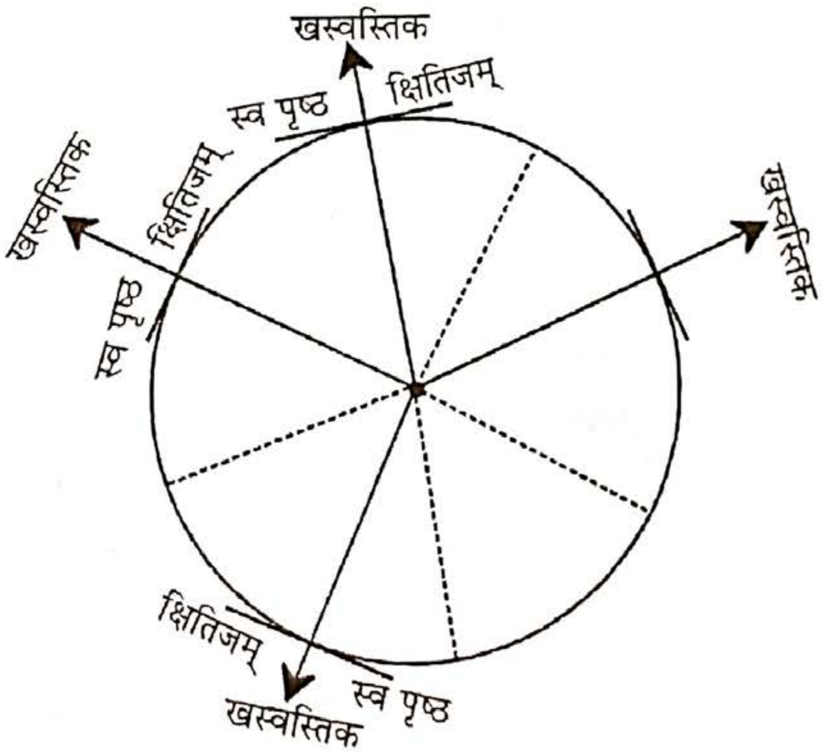
महद्वृत्तं क्रान्तिवृत्तमस्ति, खस्वस्तिकात् पातालस्वसितकात् वा नवत्यंशमितत्रिज्यया खगोले कल्पितं महद् वृत्तं खगोलीयक्षितिजं प्रोच्यते। इदं प्रायेण दर्शकस्य भूपृष्ठीय क्षितिजादभिन्नमेव। खस्वस्तिक-पातालस्वस्तिकप्रोतानि महदवृत्तानि 'उर्ध्वाधरमहद्वृत्तानि' कथ्यन्ते। एतानि सर्वाणि खगोलीयक्षितिजं नवत्यंशकोणैरुललङ्घयन्ति। ध्रुव स्थानाद् नवत्यंशमितत्रिज्यया खगोले कल्पितं वृहदवृतं नाडीवृत्तं विषुववृत्तं कालवृत्तं वा कथ्यते।

स्वपृष्ठस्थानपरिभाषा-

विनोर्ध्वाश्रयमन्योऽस्ति नाश्रयो लम्ब एव सः।
भूपृष्ठे यत्र संलग्नस्तत्पृष्ठं स्वस्य तत्स्थले।।18।।

भाष्य- बिना ऊर्ध्वस्वस्तिक के आश्रय के, जो मनुष्य पृथ्वी पर जहाँ पर लम्बाकार रूप में स्थित (खड़ा) होता है, वह भूपृष्ठ पर जहाँ संलग्न होता है, वह स्थान ही उसका अपना पृष्ठ स्थान होता है।

संस्कृत- यो जनो यत्र, भूमिपृष्ठे तिष्ठति तत् तस्य पृष्ठस्थानम् अथवा स्वदेश इत्युच्यते। ऊर्ध्वाश्रयं तूर्ध्वस्वस्तिकाश्रयं बिना यस्य सूत्रस्याश्रयो नास्ति, स एव लम्बोऽवलम्बाकारः भूपृष्ठे यत्र संलग्नस्तत्स्थले तत् स्वस्य पृष्ठं पृष्ठस्थानमिति। खगोले ऊर्ध्वाधरदिशायां दर्शकस्य शीर्षस्य यथार्थत उपरि वर्तमानो बिन्दुः खस्वस्तिकं वा खमध्यनाम्नाप्युच्यते।



मनुष्य पृथ्वी पर जब लम्बरूप में सीधा खड़ा होता है तब उसके खस्वस्तिक तथा पैरों से गत रेखा (गोल) पृथ्वी के केन्द्र में से होकर जाती है तथा वह पृथ्वी पर लम्बरूप में होती है। पृथ्वी के नीचे, खस्वस्तिक से भूकेन्द्र गत सीधी रेखा, पृथ्वी को जहाँ पर काटती है वह स्थान अधः अथवा पातस्वस्तिक नाम का होता है।

यहाँ कथित श्लोक-14 सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक- 41 ही है।

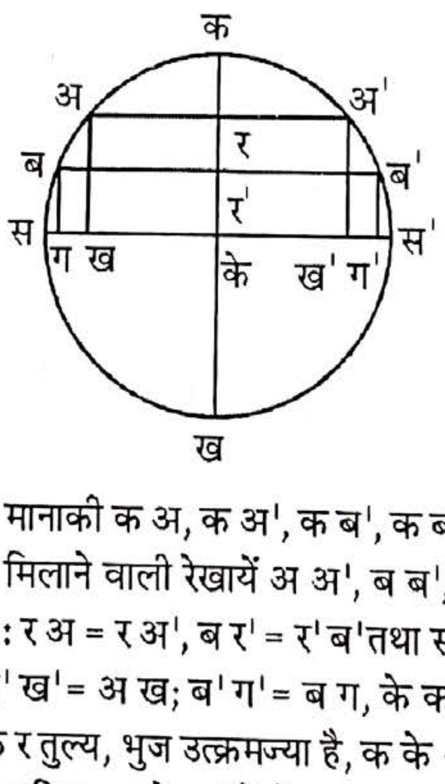
ज्योत्पत्तिपरिभाषा-

इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं कार्यं दिगङ्कं भलवाङ्कितं च।
ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये तदाद्यजीवाधनुरेतदेव।।19।।

द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां चापे तु दत्त्वोभयतो दिकङ्कात्।
ज्ञेयं तदग्रद्वयबद्धरज्जोरर्धं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम्।।20।।
दोः कोटिजीवारहिते त्रिभज्ये तच्छेषके कोटिभुजोत्क्रमज्ये।
ज्याचापमध्ये खलु योऽत्र बाणः सैवोत्क्रमज्या सुधियात्र वेद्या।।21।।

भाष्य- इष्ट अंगुल व्यास का एक वृत्त बनाकर उसमें दिशायें तथा 360 अंश अंकित करे। नब्बे (90^0) अंश में ज्या संख्या (24 अथवा इष्ट) का भाग देने से प्राप्त तुल्य प्रथम जीवा होती है तथा वही उसका धनु भी होता है। इसका दुगुना, तिगुना आदि तुल्य चाप अंकित दिशाओं के दोनों ओर उतने-उतने अन्तर पर बनाये। उन दोनों ओर काटे गये चापों के अग्र बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा का अर्ध भाग तुल्य सभी के लिए इसी प्रकार होती है। ज्या तथा कोटिज्या को त्रिज्या में से घटाने से प्राप्त शेष क्रमशः कोटि तथा भुज की उत्क्रमज्या होती है। ज्या तथा चाप के मध्य में जो बाणरूप होता है वही उत्क्रमज्या होती है, सुबुद्धि से जाने।

टिप्पणी- ये श्लोक सिद्धान्तशिरोमणि के ज्योत्पत्ति अध्याय के श्लोक-2-3 तथा 5 ही है। इनकी विशेष विस्तार से व्याख्या के लिए मेरे द्वारा कृत सि.शि. की टीका का अवलोकन करें।



चित्र में इष्ट चाप मानाकी क अ, क अ', क ब', क ब तथा क स, क स' इत्यादि हैं। इनके अग्र बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखायें अ अ', ब ब', स स' क्रमशः पूर्ण ज्या हैं तथा इनके अर्ध भाग क्रमशः र अ = र अ', ब र' = र' ब' तथा स के = के स' इनकी ज्यार्ध अथवा अर्धज्या हैं। तथा अ' ख' = अ ख; ब' ग' = ब ग, के क कोटि हैं। त्रिज्या क के में से कोटि अ' ख' घटाने से क र तुल्य, भुज उत्क्रमज्या है, क के - ब' ग' = क र' तुल्य भुज की उत्क्रमज्या है। इसी प्रकार त्रिज्या = के स' में से ज्या= र अ' घटाने से कोटि उत्क्रमज्या होती है तथा त्रिज्या के स'- र' ब ज्या = ग' स', कोटि उत्क्रमज्या है। इन उत्क्रमज्याओं को ही बाण कहा जाता है। कोट्युत्क्रमज्या= त्रि-ज्या भुज; भुजोत्क्रमज्या= त्रि-कोज्या भुज अ क अ' चाप चाप तथा अ अ' ज्या के मध्य बाण रूप क र = उत्क्रमज्या है।

मेरे द्वारा कृत ज्यातत्त्वविवेक का भी इस संदर्भ मे अध्ययन किया जा सकता है।

संस्कृत– इष्ट त्रिज्या व्यासार्धमानेन समावनौ वृत्तं कृत्वा चक्रांशैश्चक्रलिप्ता-भिश्चाङ्कितं च दिगङ्कितम्। तथा प्रागपरं तद्वद्दक्षिणोत्तरसूत्रकम् कार्या। वृत्ते प्राकृचिह्नात् पार्श्वद्वयेऽप्यत्र भुजांशकान् दत्वा तदग्रयोर्लग्ना रेखैका सा पूर्ण शिञ्जिनी भवेत्। द्विघ्नबाह्वंश-तुल्यस्य पूर्णचापस्य सा भवेत्। तदर्धं भुजतुल्यस्य चापखण्डस्य शिञ्जिनी। लाघवं गणिते दृष्ट्वा गणकैरर्धशिञ्जिनीम् तज्ज्याभिधां च तां कृत्वा व्यवहार: कृतस्त्विह। अतोऽत्र पूर्वचिह्नाच्च भुजांशानेकतस्तत: यावत् तदग्रकं तिर्यग्रेखा प्राक्सूत्रतो ज्यका। एवं तदग्रकं यावद् दक्षिणोत्तरसूत्रत: ऊर्ध्वरेखा च कोटिज्या, बाहुकोटि क्रमेण ते त्रिज्या कर्णौ व्यासखण्डं। त्रिज्यात: शोधिते ते स्त: कोटि-बाहूत्क्रज्यके, ज्याचापमध्यगा सैव बाणरूपोत्क्रमज्यका। एवं क्रमोत्क्रमज्ये च भुजांशजनिते च ते परस्परं च दो: कोटि।

स्वनिरक्षदेशमाह-

याम्योत्तरं स्वदेशस्थं निरक्षाभिधमण्डले।
वृत्तं यत्र विलग्नं स्यान्निरक्षं स्वस्य तत् स्थलम्।।22।।

भाष्य– स्वदेश पर याम्योत्तर में स्थित मण्डल (वृत्त) निरक्ष नाम के मण्डल पर जहाँ पर मिलता है वह स्थान, स्वस्थान का निरक्ष स्थान होता है।

टिप्पणी– यह श्लोक सि.त.वि. के मध्य. का श्लोक–166 ही है। स्व स्थानगत याम्योत्तरवृत्त निरक्षमण्डल अर्थात् नाड़ीवृत्त को जिस स्थान पर मिलता है, नाडीवृत्त पर स्थित वह स्थान, स्वस्थान का निरक्ष स्थान कहा जाता है।

संस्कृत– निजयाम्योत्तरवृत्तनाडीवृत्तसंपात एव स्वनिरक्षदेश इति भाव:।

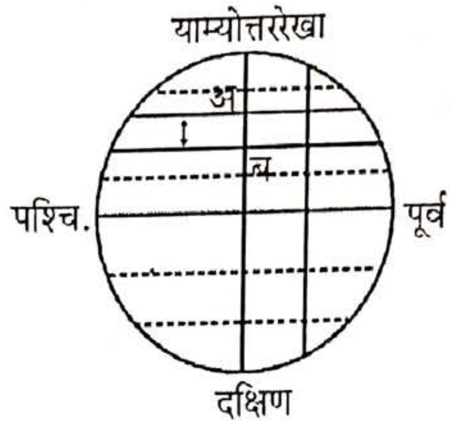
भूपरिधिमानम्-

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधि: सप्ताङ्गनन्दाब्धय-
स्तद्व्यास: कुभुजङ्गसायकभुवोऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक्पुरयो: पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांशहृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्।।23।।

भाष्य– भूमि की परिधि 4967 योजन कही है तथा व्यास 1581 योजन कहा है। याम्योत्तर रेखा पर स्थित दो प्रदेशों के अक्षांशों के अन्तर को भू-परिधि से गुणा करके 360 से विभक्त करने से दोनों स्थानों के अन्तर योजन होते हैं।

टिप्पणी– यह श्लोक सिद्धान्तशिरोमणि के मध्यमाधिकार के भूपरिध्याद्यध्याय का श्लोक–1 ही है। प्रचलित पुस्तकों में इस एक ही श्लोक के दो श्लोक बनाकर कहा है, जो अशुद्ध है। मेरे द्वारा कृत सि.शि. की टीका की विस्तार से व्याख्या के लिए अवलोकन करें।

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भूपरिधि तथा उसके व्यास के मान भिन्न कहे हैं। यह भिन्नता योजन मान की इकाई के निर्धारण के अन्तर के कारण भी है तथा $\pi=\sqrt{10}$ तथा $\frac{3927}{1250}$ मान स्वीकरने के कारण भी है।



यहाँ याम्योत्तर रेखा पर स्थित दो प्रदेशों अ तथा ब के बीच की योजन दूरी ज्ञात करना बताया है।

ब्रह्मगुप्त ने भूव्यास 1580 तथा परिधि 4997 कही थी जो $\pi=\sqrt{10}$ मान से ज्ञात की गई थी। भास्कराचार्य ने आर्यभटोक्त π का शुद्ध मान $\pi=\frac{3927}{1250}$ ग्रहण करके भूपरिधि का अधिक शुद्ध मान 4267 कहा। नवीन गणितानुसार निरक्षस्थान पर पृथ्वी का व्यास प्रमाण 7926.68 क्रोशार्ध तुल्य है परन्तु ध्रुवप्रोत व्यास 7899.88 क्रोशार्ध तुल्य है। अतः पृथ्वी लगभग गोलाकार ही है।

संस्कृत- 4967 योजनानि भूगोलस्य प्रमाणम्। तस्य परिधेर्योजनमयी विस्तृतिः योजनविष्कम्भ भूभुजङ्गविषयामृतांशवः एकाशीत्य पञ्चोशतोत्तरं सहस्र 1581 मित्यर्थः। अधुना पृथिव्या व्यासः पृथिव्याः परिधिमानं प्रत्यक्षविधिना गणयित्वा निश्चीयते। निरक्षप्रदेशे पृथिव्या व्यासस्य परिमाणं 7926.68 क्रोशार्धमितम्, परन्तु ध्रुवप्रोत व्यासः 7899.88 क्रोशार्धमितः विशोधनाद् विलब्धात् 13.35 क्रोशार्धमिता प्रत्येकस्य ध्रुवस्य निम्नता। पृथिव्या ध्रुवनिम्ननामानम् $2\times13.35 \div 7926.68 = 1/297$ अत्यल्पेव। अर्थात् व्यावहारिकदृष्ट्या पृथिवी गोलाकारैव।

स्फुटभूपरिधिः ज्ञानम्-

स्वदेशमेर्वन्तर योजनैर्यल्लम्बांशजैर्मेरुगिरेः समन्तात्।
वृत्तं स्फुटो भूपरिधिर्यतः स्यात् त्रिज्याहृतो लम्बगुणः कृतोऽस्मात्।।24।।

भाष्य- स्वदेश से मेरु तक लंबांश तुल्य के योजन अन्तर पर मेरु पर्वत से पृथ्वी पर जो चारों ओर वृत्त होता है, वह स्फुट भूपरिधि होती है जिसका मान, मध्यम भूपरिधि को लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित यह श्लोक सि.शि. के मध्यगति वासनाध्याय का श्लोक-25 ही है।

यहाँ कथित को ही सि.त.वि. के मध्यमा. में इस प्रकार कहा है। यथा-

"यावत्स्वदेशादक्षांशाः स्वीययाम्योत्तरे त्वथ।
मेरोर्यावल्लम्बभागास्तथा तैर्लम्बभागकैः ।।167।।
मेरूमध्याच्च यद्भूमौ वृत्तं भूपरिधिः स्फुटः।
लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तोऽतः स्वभूपरिधिः स्फुटः ।।168।।" इति

संस्कृत- स्वदेशात् तत्स्थलं किन्तु स्वनिरक्षदिशं यावत् स्वयाम्योत्तरवृत्ते अक्षांशाः। तथा मेरोर्ध्रुवात् स्वदेशं यावत् लम्बभागा भवन्ति। अत्र मेरूमिति पाठः साधुः। तथात्वे स्वदेशात् मेरुं यावत् लम्बभागकाः तथा भूमौ भूगोलोपरि भूगोलीयमेरु केन्द्रात् तेर्भूबिम्बीय-लम्बांशैर्यद्वृत्तं स स्फुटो भूपरिधिस्तस्यानयनन्त्वेवम्। स्वभूपरिधिर्लम्बज्याघ्नः त्रिज्याऽऽप्तस्तदा स्फुटो भपूरिधिः स्यादित्यत्रोपपत्तिः।

तत्र भूबिम्बीयलम्बांशवृत्तप्रतिपालीस्थबिन्दुभ्यो ध्रुवसूत्रे ये लाम्बास्तेषामेक-बिन्दुगतत्वात् समत्वाच्च तल्लम्बमूल केन्द्रात्तल्लम्बत्रिज्यया कृतं वृत्तं स्पष्टभूपरिधिः स्यात्। तत्र भूकेन्द्रात्स्वस्थानं यावद् भूव्यासार्धम् कर्णः। लम्बः कोटिः। लम्बमूलात् भूकेन्द्रं यावत् भुजः।

$$\text{अथ त्रिकोणमित्या } \frac{\text{भूव्यासार्ध} \times \text{ज्या लं}}{\text{त्रि}} = \text{लम्ब}$$

$$\text{अर्थात् } \frac{\text{ज्या लं}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{लम्ब}}{\text{भूव्यासार्ध}}$$

अत्र येन गुणितो व्यासः परिधिर्भवेत् स चाङ्क= अं

$$\text{तदा, } \frac{\text{ज्या लं}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{लम्ब} \times \text{अ}}{\text{भूव्यासार्ध} \times \text{अ}}$$

$$\text{अर्थात् } \frac{\text{ज्या लं}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{स्प. भू. प.}}{\text{म. भू. प.}}$$

$$\text{अतः } \frac{\text{ज्या लं} \times \text{म. भू. प.}}{\text{त्रि}} = \text{स्प. भू. प}$$ । अतः उपपन्न सर्वम्।

लङ्कारेखाप्रदेशः-

वृत्तानि खाङ्कैर्विहितानि तानि सर्वाणि तन्मध्यगतान्यवश्यम्।
निरक्षजा रावणराजधानी लङ्काऽथ तद्दक्षिणसौम्यवृत्तम् ।।25।।
रेखाभिधं तन्निजयाम्यसौम्यवृत्तान्तरं प्रागपरं तथाऽन्यत्।
याम्योत्तर स्वस्वनिरक्षमध्ये तिर्यक् स्वरेखास्वनिरक्षमध्ये ।।26।।

भाष्य- जो स्वदेश तथा स्वनिरक्ष के याम्योत्तर वृत्त के पृष्ठकेन्द्र से 90^0 पर वृत्त हैं उन वृत्तगत देशों के प्रत्येक बिन्दु से 90^0 के सभी वृत्त अवश्य ही उस पूर्व पृष्ठकेन्द्र से होकर जाते हैं अथवा लगते है। जो निरक्ष पर स्थित लङ्का नगरी है, उस पर गत दक्षिणोत्तर

वृत्त, रेखा नाम का होता है। तथा उस से अन्य पूर्व तथा पश्चिम की ओर स्थित स्वस्व याम्योत्तर रेखा वृत्त (स्वस्व) निरक्ष में जहाँ लगते हैं वे स्वस्व निरक्ष स्थान होते हैं।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक- 10-11 ही हैं। जो याम्योत्तरवृत्त लङ्का से होकर जाता है वह मुख्यरेखा नाम से कही जाती है तथा स्वस्व नगरों के ऊपर से जो याम्योत्तर वृत्त होते हैं वे स्व-स्व रेखा देश कहे जाते हैं। ये सभी याम्योत्तर रेखायें निरक्षवृत्त अर्थात् शून्य अक्षांश के वृत्त पर मिलती है। वहाँ पर उनका मिलान बिन्दु या स्थान उन रेखाओं पर स्थित प्रदेशों का निरक्ष स्थान होता है जहाँ से स्वस्थान तक याम्योत्तरवृत्त में स्वाक्षांश होते है। तथा लङ्का से गत याम्योत्तर रेखा द्वारा मिला हुआ वह स्थान मुख्य निरक्ष बिन्दु या स्थान होता है।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक के मध्यमाधिकार में स्पष्ट रूप में कहा है। यथा-

''एवं मेरूद्वयस्थानाद्वृत्तं लङ्कागतं हि तत्।
स्वरेखानगराणां तु वृत्तं रेखाभिधं किल।।169।।
याम्योत्तरं स्वदेशस्थं निरक्षाभिधमण्डले।
वृत्तं यत्र विलग्नं स्यान्निरक्षः स्वस्य तत् स्थलम्।।166।।
यावत्स्वदेशादक्षांशाः स्वीययाम्योत्तरे त्वथ।

संस्कृत- लङ्कायां यत् याम्योत्तरवृत्तं तदेव रेखादेशीययाम्योत्तरवृत्तम्, तदवृत्तभूतलगता एव भूदेशा रेखादेश उच्यन्ते। तत्र रेखादेशे स्वाक्षांशसमा अक्षांशाः यत्र भवेयुस्तदेव स्वीयं रेखासंज्ञं नगरम्।

निजयाम्योत्तरवृत्तनाडीवृत्तसंपात एव स्वनिरक्षदेश इति भावः। स्वदेशात् तत्स्थलं किन्तु स्वनिरक्षदेशं यावत् स्वयाम्योत्तरवृत्ते अक्षांशाः भवति।

यहाँ उद्धृत दोनों श्लोक सिद्धान्ततत्त्वविवेक के त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक-10-11 ही है। इनसे पूर्व वहाँ कथित श्लोक निम्नलिखित है। यथा-

''व्यक्षस्वदेशक्षितिजे विभिन्ने तयोश्च याम्योत्तरवृत्तमेकम्।
यन्मध्यतः खाङ्कलवैस्तु यत् स्यात् सर्वत्र तद्वृत्तगदेशतोऽपि।।9।।'' इति

इसका अर्थ है- स्वदेश तथा स्वनिरक्ष देश के क्षितिजवृत्त विभिन्न होते हैं। उनके खस्वस्तिकरूप पृष्ठकेन्द्र भिन्न होने से वहाँ से 90 अंश पर कृत वृत्त भी भिन्न होते हैं। वे स्वदेश तथा स्वनिरक्ष देश भिन्न होने पर भी उनका याम्योत्तरवृत्त एक ही होता है। उनका पूर्वापरस्वस्तिक भी एक ही होने से, वहाँ से 90 अंश पर बनाया गया याम्योत्तरवृत्त भी एक ही होता है।

इसके आगे यहाँ ग्रन्थोक्त श्लोक- 12-13 हैं जिनका अर्थ पूर्व में कह दिया गया है। इन तीनों श्लोकों का संस्कृत अर्थ-

संस्कृत- व्यक्षो निजनिरक्षदेशः स्वदेशश्चानयोः क्षितिजवृत्ते विभिन्ने भिन्नाकारे भवतः। तयोः खस्वस्तिकरूपपृष्ठकेन्द्रभेदात्ताभ्यां नवत्यंशै कृतवृत्तयोर्भिन्नत्वं सुगममिति।

अथ च तयोर्व्यक्षस्वदेशयोर्भिन्नत्वेऽपि याम्योत्तरवृत्तं त्वेकमेव, तत्र तयो पूर्वापरस्वस्तिकयोरेकत्वात्ततो नवत्यंशैः कृतस्यैव याम्योत्तरवृत्तस्यैकत्वं स्फुटमिति। यन्मध्यतो यत्पृष्ठकेन्द्रात् खाङ्कलवैर्यद्वृत्तं स्यात्, तद्वृत्तगदेशतः प्रत्येकबिन्दोरपि खाङ्कैर्यानि वृत्तानि विहितानि, तानि सर्वाणि अवश्यं तत्पूर्ववृत्तपृष्ठकेन्द्रगतानि भवन्ति। इति पूर्वश्लोक पूर्वार्धोपपत्तिरूपमेवेति।

अथ रावणराजधानी लङ्का निरक्षदेशगताऽस्ति। तस्या याम्योत्तरवृत्तं तु रेखाभिधमर्थाद्रेखादेशीययाम्योत्तरम्। तत्र भूकेन्द्राद्रेखादेशीययाम्योत्तर वृत्तप्रत्येकबिन्दुगतैः सूत्रैश्छिन्ना भूप्रदेशा रेखादेशा उच्यन्ते।

अथ तत्तयोः रेखादेशीययाम्योत्तरवृत्त निजयाम्योत्तरवृत्तयोरन्तरे, स्वस्वनिरक्षमध्ये स्वनिरक्षरेखादेशीयनिरक्षयोर्मध्येऽर्थात् नाडीवृत्ते, प्रागपरं पूर्वापरं देशान्तरं ज्ञेयम्। तथा स्वस्वनिरक्षमध्येऽर्थात् स्वदेशस्वनिरक्षयोर्मध्येऽन्यम् किन्तु पूर्वापरभिन्नमत एव याम्योत्तरं देशान्तरं ज्ञेयम्। तथा च स्वरेखास्वनिरक्षमध्ये तिर्यक् कर्णाकारं देशान्तरमर्थादेतदुक्तं भवति–ध्रुवस्थानं केन्द्रं मत्वा स्वलम्बांशैर्यदवृत्तं तल्लम्बांशवृत्तम्, तद्यत्र रेखायाम्योत्तरवृत्ते लगति, तत्रैव स्वरेखादेशखस्वस्तिकम्, भूकेन्द्रात्तद्गतं सूत्रं यत्र भूमिपृष्ठे लग्नम्, स एव स्वरेखादेश उच्यते, अर्थाद्यस्य रेखा देशस्याक्षांशाः स्वाक्षांशसमाः स स्वरेखादेश इति फलितम् तत्र लम्बांशयोः समत्वादक्षांशयोः साम्यं सुखनैवावगम्यते।

तत्र रेखादेशीयस्वदेशीययाम्योत्तरवृत्तयोः स्पष्टभूपरिधौ वा लम्बांशवृत्ते यदन्तरं तावदेव पूर्वापरं देशान्तरम्, याम्योत्तरं देशान्तरं तु स्वदेशस्वनिरक्षदेशयोरन्तरं पलांशप्रमितम्।

तत्र स्वरेखादेशखस्वस्तिकस्वनिरक्षखस्वस्तिकयोः प्रोते वृत्ते तयोरेवान्तरं कर्णरूपं देशान्तरम्, वा स्वनिरक्षस्वरेखादेशयोरन्तरं भूबिम्बोपरि तिर्यक देशान्तरमिति।

मध्यरेखा–

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशन् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः।।27।।

भाष्य– जो लङ्का, उज्जयिनी के ऊपर से होता हुआ कुरुक्षेत्रादि प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र दोनों मेरू तक जाता है वह बुद्धिमानों ने मध्यरेखा पृथ्वी पर कही है।

टिप्पणी– सि.शि. के मध्यमाधिकार के भूपरिध्याद्यध्याय में यह श्लोक–2 कहा है। सि.त.वि. के मध्यमाधिकार में इसको सरल रूप में कहा है। यथा–

''एवं मेरुद्वयस्थानाद्वृत्तं लङ्कागतं हि तत्।
स्वरेखानगराणां तु वृत्तं रेखाभिधं किल।।69।।'' इति

अर्थात् दोनों मेरुस्थानों से गत वृत्त जो लङ्का के ऊपर से होकर जाता है वह वृत्त ही भूतल पर गत भूमि पर रेखादेश नाम का होता है।

तथा रेखादेशीय नगरों के नाम भी कहे हैं यथा–

''प्रोक्तरेखाख्यदेशे तु स्थानान्यर्कोक्तशास्त्रतः।
राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्यसंस्थिताः।।181।।

रोहीतकमवन्ती च तथा संनिहितं सरः।
एवमन्यान्यपि ज्ञेयान्यन्यशास्त्रप्रमाणतः।।182।।'' इति

यहाँ भास्करोक्त 'करणकुतूहलम्' ग्रन्थ में कथित श्लोक उद्धृत करके उसमें कथित रेखा देशी प्रदेशों के नाम कहे हैं। राक्षसपुरी लङ्का, देवकन्या, काञ्ची, सितपर्वत, पर्यलीवत्सगुल्म, उज्जयिनी, गर्गराट, कुरुक्षेत्र, मेरु इत्यादि।

संस्कृत- एवं लङ्कायां यत् याम्योत्तरवृत्त तदेव रेखादेशीययाम्योत्तरवृत्तम्, तदवृत्तभूतलगता एव भूदेशा रेखादेशा उच्यन्ते। तत्र रेखादेशे स्वाक्षांशसमा अक्षांशा यत्र भवेयुस्तदेव स्वीयं रेखासंज्ञं नगरम्।

राक्षसालयः कुमेरुः। देवौक। सुरालयः सुमेरुः। एतौ च शैलौ तयोः। रोहितकमवन्ती च तथा संनिहितं गतसूत्रं। अत्र भास्करोक्तं करणकुतूहले यथा- ''पुरी राक्षसी देवकन्याऽथ काञ्ची, सितः पर्वतः पर्यलीवत्सगुल्मौ।। पुरी चोज्जयिन्याह्वया, गर्गराटम्, कुरुक्षेत्रमेरु, भुवो मध्यरेखा। अत्र राक्षसी पुरी लङ्का इति।।

देशान्तरम्-

येऽनेत लङ्कोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्युः।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद् याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम्।।28।।

भाष्य- उदयान्तरकर्म के द्वारा जैसे ग्रह, लङ्का में सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार देशान्तरकर्म के द्वारा ग्रह स्वस्थान के क्षितिज पर सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं। देशान्तर दो प्रकार के होते हैं, एक पूर्वापर तथा अन्य याम्योत्तर जिसको चर संज्ञक कहते हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.शि. के मध्यगतिवासनाध्याय का श्लोक-23 है। सि.त.वि. के मध्यमा. में इसको बहुत स्पष्ट रूप में कहा है। यथा-

''स्पष्टभूपरिधौ स्वीयं स्थानं यावच्च योजनैः।
स्वीयं देशान्तरं ज्ञेयमथ तच्चोच्यतेऽन्यथा।।171।।'' इति

अर्थात् स्पष्ट भूपरिधि में स्वस्थान, स्वरेखादेश (रेखादेश) से जितने योजन दूरी पर होता है, उतने स्वदेश के देशान्तर होते हैं। इसको यवन परिभाषा द्वारा आगे के श्लोकों में समझाया है।

विस्तृत व्याख्या के लिए मेरे द्वारा कृत सि.त.वि. की व्याख्या का अवलोकन करें।

संस्कृत- ततः स्वरेखादेशात् (पूर्वोक्तम्) स्पष्टभूपरिधौ स्वीयं स्थानं योजनैर्यावदन्तरितं तावत् स्वीयं देशान्तरं ज्ञेयम्।

लग्नपरिभाषा-

प्राग्भागके गर्भकुजे विलग्नो भमण्डलांशोऽस्ति तदेव लग्नम्।
षड्भान्तरेऽतोऽस्तविलग्नमेवं स्यादूर्ध्वयाम्योत्तरगं खलग्नम्।।29।।

भाष्य- गर्भ क्षितिज के पूर्वभाग में जो क्रान्तिवृत्त के अंश लगते हैं वे ही लग्नसंज्ञक होते है। इससे छः राशि अन्तर पर इसका अस्तलग्न होता है, जो ऊर्ध्व याम्योत्तर तथा क्रान्तिवृत्त संपात पर गत होता है वह खलग्न होता है।

टिप्पणी- जो अधो याम्योत्तर तथा क्रान्तिवृत्त संपात पर होता है वह चतुर्थलग्न होता है। यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-195 ही हैं भास्कराचार्य ने सि.शि. के गोलाध्याय के त्रिप्रश्नवासना में इस प्रकार कहा है-

''यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे।।26।।''

अन्य प्रकाशित ग्रंथों में प्रथम चतुर्थ-सप्तम दशमलग्न परिभाषा के लिए श्लोक कहा है। यथा-

''यत्र लग्नं भवृत्तं स्वके प्राक्कुजे तद् गृहाद्यं बुधैर्लग्नमित्युच्यते।
अस्तलग्नं युतं यत्र पश्चात्कुजे मध्यलग्नं च याम्योत्तरे मण्डले।।'' इति

यह श्लोक यहाँ दिये गये श्लोक को ही अन्य प्रकार से कहा है। कोई अन्तर नहीं है।

संस्कृत- गर्भकुजे प्राग्भागे यत्र भमण्डलं लग्नं तत्र ये अंशाः अस्ति तदेव लग्नं कथ्यते। तत् षड्यान्तरे अस्तलग्नमस्ति। एवं ऊर्ध्व भागे याम्योत्तरवृत्त क्रान्तिवृत्तसंपाते खलग्नमस्ति तथा ऽधोभाग याम्योत्तरापमवृत्त संपाते चतुर्थलग्नमस्ति।

क्षितिजसमस्थानध्रुवादिप्रदेशदर्शनम्-

तद्योगचिह्नान्नवतिप्रमांशैर्वृत्तं कृतं स्वक्षितिजं च तत् स्यात्।
तद्याम्यसौम्यक्षितिजैक्यके ये समाख्यसंज्ञौ भवतश्च सौम्ये।।30।।
ततोऽक्षभागैर्ध्रुवचिह्नमूर्ध्वं याम्ये त्वधस्तन् परिकल्पनीयम्।।31।।

भाष्य- उन योग बिन्दु (खस्वस्तिक) से नब्बे अंश पर बनाया गया वृत्त उसका स्वक्षितिज होता है। याम्योत्तरवृत्त तथा क्षितिजवृत्त के दोनों मिलान बिन्दु सम संज्ञक होते हैं। उत्तर के भाग के समस्थान से आगे याम्योत्तरवृत्त में अक्षांशों से ऊपर जो चिन्ह है उसको ऊर्ध्व (अथवा उत्तर) ध्रुव तथा नीचे दक्षिण भाग में अक्षांशों के नीचे जो चिह्न है वह अधः (अथवा दक्षिण) ध्रुव कल्पित करते हैं।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त.वि. के मध्यमा. के श्लोक-308-$\frac{1}{2}$ ही हैं। इनका चित्र में स्थान देखने के लिए पूर्व श्लोक-17 की संस्कृत व्याख्या में दिये गये चित्र का अवलोकन करें। आकाश में जो स्थिर तारा दिखता है वह ध्रुव स्थान होता है ये उत्तर-दक्षिण दो होते हैं।

संस्कृत- तत्तस्य वृत्तचतुष्टयस्य योगचिह्नात् किन्तु खस्वस्तिकात् नवत्यंशैर्यद्वृत्तं कृतं तत् स्वक्षितिजं स्यात्। अथ याम्योत्तरवृत्तक्षितिजवृत्तयोरैक्ये ये, तौ याम्यसौम्यौ सस्थानसंज्ञौ भवतः। अत्र 'समाख्यसंज्ञौ इति पाठो न युक्तः किन्तु 'समस्थलाख्यौ' इति साधुतरः पाठः। अथ सौम्ये भागे, ततः सौम्यसमस्थानात् अक्षांशैरूर्ध्वं याम्योत्तरवृत्ते यच्चिह्नं तत् सौम्यध्रुवचिह्नम्। एवं याम्ये भागे याम्यसमस्थानदक्षांशैरधो यो बिन्दुस्तद्दक्षिणं ध्रुवस्थानं परिकल्पनीयम्। खगोलीय क्षितिजस्य चतसृषु दिशासु चत्वारि समस्थानानि वर्तन्ते-पूर्वसमस्थानम्,

दक्षिणसमस्थानम्, पश्चिमसमस्थानम्, उत्तरसमस्थानञ्च। क्रमिकसमस्थानद्वयमध्ये नवत्यंशमितचापो वर्तते।

दक्षिणसमस्थान-उत्तरसमस्थान प्रोतम् ऊर्ध्वाधरमहद्वृत्तं याम्योत्तरमुच्यते। तथा पूर्वसमस्थान-पश्चिमसमस्थान प्रोतम् ऊर्ध्वाधरमहद्वृत्तं पूर्वापरवृत्तं सममण्डलं वा प्रोच्यते।

खगोलीयक्षितिजं खस्वस्तिकं वा दर्शकस्थित्यनुसारं परिवर्तते। पूर्व श्लोक (14)स्य व्याख्या: चिचेणेदं स्पष्टोभवति।

पूर्वापरमन्यद् याम्योत्तरं तथा कोणवृत्तद्वयमेवं वृत्तचतुष्टयमूर्ध्वाधोरूपमावेष्ट्य तदर्धे वृत्तं क्षितिजाख्यं तिष्ठति।

खगोले प्रायेण नक्षत्राणि खे पूर्वत: पश्चिमदिशां प्रति गच्छन्ति दृश्यन्ते, तथाप्याकाशमवलोकयद्भिर्ज्योतिर्विद्भिर्दृष्टं यत् खगोले स्थानविशेषे स्थितमेकं नक्षत्रं परिभ्रमणं न भजते। खगोलस्य यो बिन्दु नक्षत्रं वा दृश्यते अचलो तत् ध्रुवस्थानं कथ्यते। खगोले द्वे ध्रुवस्थाने उत्तर ध्रुवस्थानं दक्षिणध्रुवस्थानम्। उत्तरध्रुवस्थानातिसमीपवर्ति नक्षत्रं "ध्रुव:" कथ्यते। ध्रुवनक्षत्रं परिवर्तनशीलमस्ति।

उन्मण्डल नाडीमण्डल क्षितिज सममण्डलानां योगो द्विधा प्राक् परतश्च, प्राक्योग: पूर्वस्वस्तिकम् परतो यो योग: स पश्चिमस्वस्तिकम्, तथा खमध्यं तू तदूर्ध्वस्वस्तिकम् एवं सर्वाध: प्रदेशोऽध: स्वस्तिकममिति।

विषुवद्द्युरात्रवृत्तयोर्लक्षणम्-

कार्यो ध्रुवाभ्यामिह खाङ्कभागैर्वृत्तं कृतं तद्विषुवाख्यवृत्तम्।
स्वस्वापमांशैश्च ततो द्युरात्रवृत्तानि याम्योत्तरदिग्गतानि।।32।।

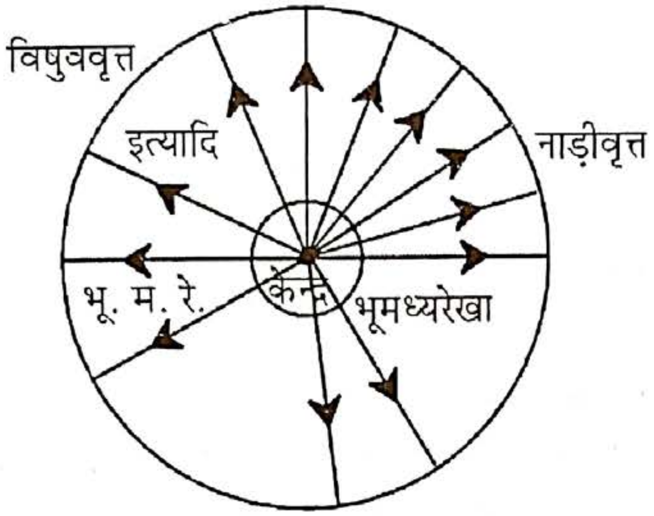
भाष्य- ध्रुवों से नब्बे अंश (व्यासार्ध) पर जो वृत्त बनाया जाता है वह विषुवत् (नाडीवृत्त) नाम का होता है। उस विषुवद्वृत्त से उत्तर व दक्षिण गोल की दिशा में स्वस्वक्रान्ति (अग्र) तुल्य दूरी पर जो वृत्त होते हैं वे अहोरात्रवृत्त होते हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि. त.वि. ग्रन्थ के मध्यमा. का श्लोक-310 ही है। विषुवद्वृत्त महद्वृत्त होता है तथा अहोरात्र वृत्त लघुवृत्त होते हैं। ये पूर्व में बता दिये गये हैं। पूर्वापरसंपात से गत तथा स्वस्थान के याम्योत्तरवृत्त में ऊर्ध्व खस्वस्तिक से दक्षिण में तथा अध: खस्वस्तिक से उत्तर में स्व अक्षांश तुल्य अन्तर पर जो वृत्त होता है वह विषुववृत्त होता है। भूमि की भूमध्यरेखा की सीध में आकाशस्थित गोल जो चित्रानुसार भूकेन्द्र से भूमध्य रेखा के प्रत्येक बिन्दु को आगे आकाश में बढ़ाकर मिलाने से बनता है वह विषववृत्त होता है।

संस्कृत- ध्रुवाभ्यां खाङ्कभागैर्नवत्यंशै: यत् कृतं वृत्तं तत् विषुवाख्यवृत्तं नाडीवृत्तमित्यर्थ:। ततो नाडीवृत्तात् तद्गोल याम्योत्तरमण्डलेऽन्तर्मध्ये स्वस्वापमांशैर्याम्योत्तर-दिग्गतानि द्युरात्रवृत्तानि (नाडीवृत्तादुभयदिशि निजनिजक्रान्त्यग्रे तत्तदहोरात्रवृत्तानि) तिष्ठन्ति।

पूर्वापरसंपातयोर्विलग्नं तथा याम्योत्तरवृत्ते खस्वस्तिकाद् दक्षिणतोऽध: स्वस्तिकादुत्तरतोऽक्षांशान्तरे यद् वृत्तं तद् विषुववृत्तम् कथ्यते।

"ध्रुवस्थानात्तु तद्गोले वृत्तं यत् खाङ्कभागकैः।
विषुवन्मण्डलं तत् स्यात् ततः स्वस्वापमांशकैः।।
अहोरात्राख्यवृत्तानि ध्रुवमध्याद्भवन्ति हि।"



सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक–20–$\frac{1}{2}$ में भी अहोरात्र के लक्षण कहे हैं।

यथा–

'त्रिराशिद्युज्यकाचापांशैर्वा तत्प्रतिभाजैः।
ध्रुवाभ्यां यानि वृत्तानि स्वाहोरात्राभिधानि च।।20।।
ध्रुवोत्थसूत्रगस्वस्वापमेनान्तरितानि च।।" इति

अर्थात् ध्रुवों से तीन राशियों के पृथक्–पृथक् जो द्युज्या (अहोरात्र) चापांश है अथवा उन तीनों राशियों के प्रति अंश जनित जो द्युज्या चापांश है उनसे जो वृत्त हैं वे उनके अहोरात्र वृत्त होते हैं और वे ध्रुवप्रोत वृत्त में नाड़ीवृत्त से स्वस्वक्रान्ति तुल्य दूरी पर स्थित होते हैं।

संस्कृत– ध्रुवाभ्यां त्रयाणां राशीनां पृथक्–पृथक् ये द्युज्याचापांशास्तैर्वा तत्तेषां राशित्रयाणां प्रत्यंशजनितद्युज्याचापांशैः यानि वृत्तानि, तानि स्वाहोरात्रवृत्तानि भवन्ति, तानि च ध्रुवप्रोतवृत्ते नाडीवृत्तात् स्वस्वापमेनान्तरितानीति स्पष्टम्।

गोलविभागपरिभाषाऽऽयनलक्षञ्च–

नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ।।33।।
मृगाननात्संचलनं भषट्कं यावद्रवेरुत्तरदिक् प्रदिष्टम्।
कीटादिलश्चागृहषट्कमेवं दृष्टं च तद्दक्षिणदिक् च तेन।।34।।
ये याम्यसौम्यायनसंज्ञके स्तस्तथा झषात् षड् ऋतवो वसन्तात्।

भाष्य– नाड़ीवृत्त से उत्तर तथा दक्षिण का भाग गोल के उत्तर तथा दक्षिण गोल भाग होते हैं। मकरादि से चलकर रवि जब तक छः राशि में रहता है तब तक वह उत्तर दिशा में रहता है। कर्क राशि से छः राशि में इसी प्रकार वह दक्षिण दिशा की ओर रहता है। इसके

(रवि) ये क्रमशः सौम्यायन (उत्तरायन) तथा याम्यायन (दक्षिणायन) संज्ञक होते हैं। तथा मीनराशि से इस (रवि) की गति से वसन्तादि छः ऋतुयें होती है।

टिप्पणी- यहाँ लिखत श्लोक-33 की प्रथम पंक्ति सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-37 की ही द्वितीय पंक्ति है जिसमें उत्तर तथा दक्षिण दो गोलभाग कहे हैं। शेष श्लोक-34 तथा अगला अर्ध श्लोक उसी अध्याय के श्लोक-38 तथा अगला अर्ध श्लोक है, जिनमें अयन के लक्षण कहे हैं।

संस्कृत- नाडीवृत्तादुद्ग्भागः याम्यो भागश्च क्रमात् सौम्ययाम्य गोलो उच्यते। सौम्यगोले मेषादिराशिषट्कस्थः तथा च याम्यगोले तुलादिराशिषट्कस्थः। मृगादिराशिषट्कस्थे रवि सौम्यायने भवति तथा कर्कादिराशिषट्कस्थे याम्यायन कथ्यते। मीनादिक्रमतो षड्तवो ज्ञेया वसन्तर्तोः समारम्भ्य।

कदम्बस्थान परिभाषा-

सौम्यध्रुवात् कदम्बस्य स्थानं याम्ये जिनांशकैः।।35।।
याम्यध्रुवात् कदम्बस्य स्थानं सौम्ये जिनांशकैः।
एवं क्रमान्मिथः षड्भान्तरितौ तौ कदम्बकौ।।36।।

भाष्य- उत्तर ध्रुव से कदम्ब का स्थान 24 अंश दक्षिण में है तथा दक्षिण ध्रुव से कदम्ब का स्थान 24 अंश उत्तर की ओर है। इस प्रकार वे दोनों कदम्ब स्थान क्रमशः छः राशि अन्तर पर स्थित होते हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.त. वि. के मध्य. का श्लोक-61-62 ही है। याम्योत्तरमण्डल में जो ध्रुव होते हैं उनसे 24 अंश पर कदम्बचिह्न होते हैं। ये उत्तर ध्रुव से दक्षिण में तथा दक्षिण ध्रुव से उत्तर में होता है।

संस्कृत- ध्रुवात् जिनांशैर्यद्वृत्तं तज्जिनवृत्तं, तत्रेष्टस्थाने कस्मिन्नपि स्थितं कदम्बभं तु सौम्यध्रुवात् याम्ये भवेत्, यतः 'सर्वेषामुत्तरतो मेरुः सर्वेषां दक्षिणतः कुमेरुः' इत्यतः याम्यध्रुवात् याम्ये कदम्बस्थानमुचितमेवेति। सौम्यध्रवात् याम्यदिशि सौम्यं कदम्बचिह्नं तथा याम्य ध्रुवात् सौम्ये किल याम्यं कदम्बसंज्ञाम्।

क्रान्तिवृत्तपरिभाषा-

कदम्बान्नवत्यंशैर्यत् स्थिरक्रान्तिमण्डलम्।।37।।

भाष्य- कदम्ब स्थान से 90 अंश दूरी पर स्थित स्थिर वृत्त क्रान्तिमण्डल होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित श्लोक को ही सि.त. वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-14 में कहा है। यथा-

"वृत्तं च यत्खाङ्कलवैः कदम्बात् तत् क्रान्तिवृत्तं किल राशिवृत्तम्।।14।।" इति

क्रान्तिवृत्त ही राशिवृत्त होता है। इस पर ही राशियों के स्थान निरूपित किये गये हैं। क्रान्तिवृत्त तथा नाडीवृत्त के दोनों संपात युति स्थान पूर्व में प्रथम वसन्तसंपात सायन

मेषारम्भसंज्ञक तथा द्वितीय संपात सायन तुलासंपात संज्ञक होता है। सि.त.वि. के मध्य. के श्लोक-63 में भी क्रान्तिवृत्त को कहा है। यथा-

"सौम्ययाम्यौ तु तन्मध्यात् तद्गोले प्रवहाभिधे।
मण्डलं खाङ्कभागैर्यत् तत् स्थिरं क्रान्तिमण्डलम्।।63।।" इति

क्रान्तिवृत्त सूर्य का प्रतीयमान वार्षिकमार्ग होता है। यह नाड़ीवृत्त से परम 23.5 अंश के आसपास झुका हुआ होता है जो प्रतिवर्ष बदलता रहता है। नाड़ीवृत्त से क्रान्तिवृत्त के दूरतम झुके हुए स्थान उत्तर में कर्क राशि की ओर तथा दक्षिण में मकर राशि की ओर होते हैं। ये क्रमशः दक्षिणायन तथा उत्तरायन बिन्दु होते हैं।

संस्कृत- कदम्ब स्थानात् नवत्यंशमित चापान्तरे यद् वृत्तं स्थितं तत्क्रान्तिवृत्तं वा राशिवृत्तं कथ्यते। सूर्यस्य प्रतीयमानो वार्षिकमार्गः क्रान्तिवृत्तं कथ्यते। अस्य नाडीवृत्तात् 23.5 अंश मिता प्रवणता विद्यते। क्रान्तिवृत्तं ययोः स्थानयोर्नाडीवृत्तमुल्लङ्घयति, तत्र संपातौ विद्येते। प्रतीयमानः सूर्य उत्तरं गच्छन् यत्र नाड़ीवृत्तमुल्लङ्घयति तत्र मेषसंपातः यत्र च दक्षिण गच्छन् नाडीवृत्तमुल्लङ्घयति तत्र तुलासंपातः। उत्तरायणं दक्षिणायनं च क्रान्तिवृत्ते नाडीवृत्ताद् दूरतमस्थाने। उत्तरायणं उत्तरार्धे, दक्षिणायनं दक्षिणखगोलार्धे वर्तते। क्रान्तिवृत्तस्य ध्रुवस्थाने उत्तरकदम्बस्थानं दक्षिणकदम्बस्थानं कथ्येते।

परमक्रान्त्यंशपरिभाषा-

परापमांशाश्च यथा भवृत्तनाड्याख्यवृत्तान्तरगा यथा वा।
ध्रुवद्वयस्थं च कदम्बयुग्मस्थितं तयोश्चापि परापमांशाः।।38।।

भाष्य- दोनों ध्रुवों तथा कदम्बों से होकर गत जो वृत्त अर्थात् अयनप्रोतवृत्त पर क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त के मध्य में परम अन्तररूप जो परमक्रान्ति अंश हैं उतना ही अन्तर ध्रुव तथा कदम्ब के मध्य में परमान्तर होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-34 ही है। एक गोल पर जो दो भिन्न महद्वृत्त स्थित होते हैं, उनके परस्पर संपात (मिलान) के दोनों बिन्दु एक दूसरे से छः राशि अन्तर (180अंश) पर होते हैं। उन संपात बिन्दुओं के तीनराशि (90 अंश) अन्तर पर उनके मध्य में परम अन्तर होता है। यही स्थिति यहाँ नाड़ीवृत्त तथा क्रान्ति वृत्त की है जो पूर्व तथा पश्चिम स्वस्तिक पर परस्पर मिलते हैं तथा 90 अंश पर उनके मध्य में अन्तर, परम 24 अंश का होता है।

संस्कृत- ध्रुवद्वयस्थं कदम्बद्वयस्थं च यद्वृत्तमर्थात् अयनप्रोतवृत्तम्, तस्मिन् भवृत्तनाड़ीवृतान्तरगता यथा परापमांशाः परमान्तररूपास्तथा हि तयोर्ध्रुवकदम्बयोरन्तरे च परापमांशाः अर्थात् यदेव वृत्तयोः परमान्तरे तदेव तयोः पृष्ठकेन्द्रान्तरमिति भावः।

गोले चैकस्मिन्ने यन्महद्वृत्तद्वयं भिन्नमस्ति, तयोरैक्यद्वयं यत्तत् अवश्यं षड्भान्तर-स्थम्, ताभ्यां सम्पाताभ्यां त्रिभेऽन्तरे हि परमान्तरं स्यात्, स्पष्टमेतदगोलविदाम्।

"पृष्ठार्धवृत्तद्वयमस्ति गोले भिन्नं तदैक्यद्वयमप्यवश्यम्।
षड्भान्तरस्थं च तयोश्च ताभ्यां त्रिभेऽन्तरे स्यात्परमान्तं हि।।" इति

विमण्डलवृत्तपरिभाषा-

यथा कदम्बद्वयतो भगोलस्वरूपकक्षाभिधगोलकोऽस्ति।
अर्कस्य तद्वत् विधुकक्षिकाख्यो गोलः कदम्बाद्विकदम्बकाभ्याम्।।39।।
षड्भान्तरेणात्र मिथः स्थिताभ्यां परेषुभागैस्तु विमण्डलाख्यः।
तद्गोलके यद्विकदम्बमध्यात् खाङ्कैस्तु वृत्तं तु विमण्डलं स्यात्।।40।।

भाष्य- जिस प्रकार से दोनों कदम्ब स्थानों से सूर्य की कक्षा नाम का क्रान्तिवृत्त होता है उसी प्रकार कदम्ब से अन्य ऐसे ही छः राशि अन्तर पर स्थित विकदम्बों से बनाया गया विमण्डल नाम का चन्द्रकक्षा का गोल होता है। इस गोल पर विकदम्ब से 90 अंश पर बनाया गया विमण्डल होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित दोनों ही श्लोक सि.त.वि. के स्पष्ट. के श्लोक- 410-411 ही हैं। यहाँ सूर्य की कक्षा क्रान्तिवृत्त के अनुरूप ही चन्द्रमा की कक्षा का निरूपण स्पष्ट रूप में किया है। दोनों की स्थिति समरूप ही है।

संस्कृत- यथा पूर्वं कदम्बद्वयतोऽर्कस्य भगोलरूपकक्षासंज्ञगोल उक्तोऽस्ति। तद्वत् कदम्बात् कदम्बाभ्यां विधुकक्षिकाख्यो गोलो विधेयस्तथाऽत्र कदम्बात् परेषुभागैर्मिथः षड्भान्तरेण स्थिताभ्यां विकदम्बकाभ्यां विमण्डलाख्यो गोलः कार्यः। तदगोले विकदम्बमध्यात् खाङ्कैर्नवत्यंशैः यद्वृत्तं तदेव विमण्डलं स्यात्, तत्तस्य विमण्डलगोलस्य केन्द्रं गर्भभूकेन्द्रं क्षितिज गर्भ भूकेन्द्रे एव भवेत्।

अन्याक्रान्तिज्याक्रान्तिज्ययोः परिभाषा-

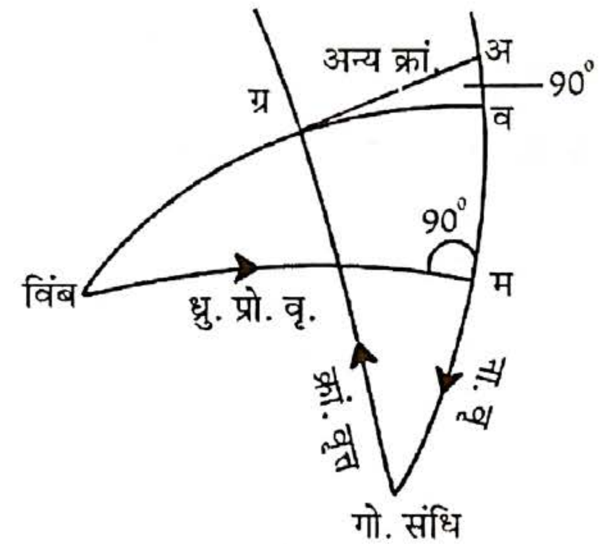
सत्रिभग्रहजद्युज्योद्धृता खेटापमज्यका।
त्रिज्यागुणाऽथ तच्चापमन्यक्रान्तिः स्वदिग्भवेत्।।41।।
चलग्रहपरक्रान्तिज्ययोराहतिरुद्धृता।
सत्रिग्रहद्युमौर्व्या वा चापमन्यापमस्ततः।।42।।
स्वेषुसंस्कारतः स्पष्टो भवेत् संस्कारदिक् च सः।
ग्रहकोटिद्युजीवाघ्नी तज्जीवा त्रिज्ययोद्धृता।।43।।
तच्चापं तु स्फुटा क्रान्तिः स्पष्टान्यापमदिक्स्थता।
यद्वाऽन्यापमजीवाप्ता स्फुटाऽन्यापमशिञ्जिनी।।44।।
खेटापमज्यया निघ्नी चापं बिम्बस्फुटापमः।
तद्व्यत्ययात् स्फुटाख्याऽन्याक्रान्तिर्ज्ञेया बुधैरिह।।45।।

भाष्य- सत्रिभग्रह की द्युज्या से ग्रह की क्रान्तिज्या को विभक्त करके त्रिज्या से गुणा करने से प्राप्त का चाप अन्य क्रान्तिज्या स्वदिशा में होती है।

सायनग्रह ज्या को परमक्रान्तिज्या से गुणा करके सत्रिभग्रह की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त का चाप अन्यक्रान्ति होती है। उसके चाप का स्वशर में संस्कार करने से वह अन्यक्रान्ति प्राप्त होती है तथा उसकी दिशा संस्कार की दिशा ही होती है। उस अन्य स्पष्टक्रांतिज्या को ग्रह की कोटि की द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त

की ज्या का चाप स्फुटक्रान्ति होती है तथा वह स्पष्ट अन्यक्रान्ति की दिशा में होती है। अथवा अन्यक्रान्तिज्या से स्फुट अन्यक्रान्तिज्या को विभक्त करके ग्रह की क्रान्तिज्या से गुणा करके प्राप्त का चाप ग्रह की स्फुटक्रान्ति होती है। इससे विपरीत क्रिया से स्फुट अन्यक्रान्ति ज्ञात करे।

टिप्पणी- यहाँ कथित श्लोक सि.त.वि. के उदयास्ताधिकार के श्लोक-21 से 25 ही हैं। ग्रह में तीन राशि (90 अंश) युक्त करने से व सत्रिभ ग्रह होता है। चित्र में **गो** गोल संधि हैं । **गोग्र** क्रान्तिवृत्त है। **गो म व अ**= नाड़ीवृत्त है। **ग्र व**= ग्रह के ऊपर से गत ध्रुवप्रोतवृत्त पर क्रांति है। **ग्र अ**= ग्रह के ऊपर से गत कदम्ब प्रोतवृत्त है तथा यही अन्यक्रांति है। **वि अ**= स्पष्यन्यक्रांति। **वि ग्र**= शर।



∠ग्र अ व= = द्युज्या (ग्रह+3 राशि) । अतः समकोण त्रिभुज **ग्र अ व** में चापीय त्रिकोणमिति के द्वारा-

$$\frac{\text{ज्या ग्र अ}}{\text{ज्या }\angle\text{अ व ग्र}} = \frac{\text{ज्या ग्र व}}{\text{ज्या }\angle\text{ग्र अ व}}$$

$$\text{अतः ज्या ग्र अ} = \frac{\text{ज्या ग्र व}\times\text{ज्या }\angle\text{अ व ग्र}}{\text{ज्या }\angle\text{ग्र अ व}} = \frac{\text{ज्या क्रां}\times\text{त्रि}}{\text{द्युज्या (ग्र+3)}} = \text{ज्या}$$

अ क्रां अतः श्लोक- 44 **उपपन्न हुआ।**

ग्रो ग्र = अयनांश संस्कृत ग्रह ज्ञात है। इसकी ज्या अ क्रां का चाप अन्यक्रान्ति **ग्र अ** है। इसको **वि ग्र**= शर में युक्त करने से **वि अ** = स्पष्टक्रान्ति होती है। यदि नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के मध्य में बिंब हो तो उनका अन्तर करने से शेष उपपन्न होता है।

चित्र में **वि म** = बिंबगत ध्रुवप्रोत वृत्त में स्प. क्रांति है। तथा **वि अ** = बिम्ब-गत कदम्बप्रोतवृत्त में स्पष्ट. अन्य क्रां. है। **ग्र** = ग्रह स्थान है। **ग्र व** = मध्यम क्रान्ति है। **ग्र अ** = मध्यम अन्यक्रांति है।

वि अ म समकोण त्रिभुज में चापीय त्रिकोणमिति के द्वारा-

$$\frac{\text{ज्या वि म}}{\text{ज्या }\angle\text{वि अ म}} = \frac{\text{ज्या वि अ}}{\text{ज्या }\angle\text{वि म अ}}$$

अत: ज्या वि म= $\frac{\text{ज्या वि अ}\times\text{ ज्या वि अ म}}{\text{त्रि}}$; $\because$ ज्या वि म अ= ज्या 90^0 = त्रि

अत: ज्या वि म = $\frac{\text{ज्या स्प. अ. क्रां}\times\text{द्युज्या (ग्र+3)}}{\text{त्रि}}$; $\because$ ज्या वि अ म= ज्या ग्र अ व = द्यु (ग्र+3)

अत: ज्या स्प. क्रां = $\frac{\text{ज्या स्प. अ. क्रां}\times\text{द्यु (ग्र+3)}}{\text{त्रि}}$; **उपपन्न हुआ।**

अब **वि अ म** तथा **ग्र अ व** सजातीय त्रिभुजों में चापीय त्रिकोणमिति से--

$$\frac{\text{ज्या वि म}}{\text{ज्या ग्र व}} = \frac{\text{ज्या वि अ}}{\text{ज्या ग्र अ}}$$

अत: ज्या वि म= $\frac{\text{ज्या ग्र वि}\times\text{ज्या वि अ}}{\text{ज्या ग्र अ}} = \frac{\text{ज्या म. क्रां}\times\text{ज्या स्प. क्रां}}{\text{ज्या म. अ. क्रां}}$; **उपपन्न हुआ।**

अथवा ज्या स्प. क्रां. = $\frac{\text{ज्या म. क्रां}\times\text{ज्या स्प. अं. क्रां}\times\text{द्यु ग्रह कोटि}}{\text{ज्या म. अ. क्रां}\times\text{ त्रि}}$

इनका चाप ग्रह की स्फुट क्रान्ति होती है।

यहाँ जो अन्यक्रान्ति आदि संज्ञायें हैं वे सार्वभौम नामक ग्रन्थ में ही कही गई हैं।

भस्वरूपपरिभाषा-

विषुवत्कान्तिवृत्तैक्यात् स्थिरा द्वादश राशय:।
मेषादयस्तथा भानि कल्पितानि स्थिराणि च।।46।।

भाष्य- विषुवद्वृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के सम्पात के एक स्थान से बारह राशियाँ मेष से आरम्भ करके पूर्वाभिमुख स्थिर की गई हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.त.वि. के मध्यमा. का श्लोक-64 ही है। क्रान्तिवृत्त को ही राशि चक्र कहा जाता है। क्योंकि इस पर ही पूर्व में मेष राशि से आरम्भ करके छ: राशियाँ उत्तरगोल में तथा छ: राशियाँ मीनान्त तक दक्षिणगोल में समान 30 अंश की कल्पित की गई हैं। इन के मान स्थिर हैं।

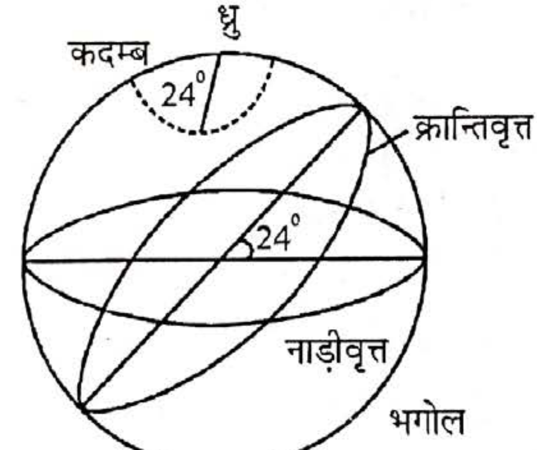
संस्कृत- विपुवत्कान्तिवृत्तैक्यात् क्रान्तिमण्डले प्राक्क्रमात् पूर्वाभिमुखक्रमात् द्वादश राशय: स्थिरा।

ध्रुववृत्तपरिभाषा-

एवं भगोलके वृत्तं कदम्बाद्यज्जिनांशकैः।
ध्रुववृत्तं तु तज्ज्ञेयं भगोलचलनाच्चलम्।।47।।

भाष्य- भगोल, कदम्ब स्थान से 24 अंश की दूरी पर स्थित अचल ध्रुव के चारों ओर वृत्ताकार में भ्रमण करता है तथा अचल ध्रुव स्थान से 24 अंश की दूरी पर कदम्ब स्थान ध्रुव स्थान के चारों ओर वृत्ताकार चक्र लगाता है।

टिप्पणी- क्योंकि नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के पृष्ठकेन्द्र क्रमशः ध्रुव तथा कदम्ब हैं तथा क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त के मध्य में 24 अंश के लगभग झुकाव रहता है अतः उनके दोनों पृष्ठकेन्द्रों के मध्य भी उतनी ही दूरी होती है, यह पूर्व में बता दिया गया है। क्रान्तिवृत्त भ्रमण करता है तथा नाड़ीवृत्त स्थिर रहता है अतः क्रान्तिवृत्त का पृष्ठकेन्द्र कदम्ब ही ध्रुव स्थान के चारों ओर 24 अंश अथवा नाडीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के मध्य अन्तर तुल्य अंश पर वृत्ताकार घूमता है। यही यहाँ कहा गया है।



यह श्लोक सि.त.वि. के मध्यमा. का श्लोक-74-$\frac{1}{2}$ ही है। आगे श्लोक-32 की व्याख्या भी देखें। लेकिन ध्रुव स्थान भी स्थिर नहीं है यह 25800 वर्षों में एक भगण पूरा करता है।

संस्कृत- कदम्बाभ्यां चलितो गोलः तारकाश्रयं भचक्रं प्रवहानिलबद्धं सतत् भ्रमति। ध्रुवात् जिनांशैर्यद्वृत्तं तज्जिनवृत्तं तन्निष्टस्थाने कस्मिन्नपि स्थितं कदम्ब भं तु सौम्यध्रुवात् याम्ये भवेत्।

याम्योत्तरनिरक्षखस्वस्तिकयोर्लक्षणम्-

स्वदेशगं यद्ध्रुवयोर्विलग्नं तत् स्वीययाम्योत्तरवृत्तसंज्ञम्।
लग्नं च यद्यत्र निरक्षदेशे स एव वेद्यः स्वनिरक्षदेशः।।48।।

भाष्य- स्वदेश के ऊपर से होकर जो वृत्त दोनों ध्रुवों के मध्यगत लगता हुआ जाता है, वह स्वदेश का याम्योत्तर वृत्त होता है। यह वृत्त निरक्षदेश (नाड़ीवृत्त) में जहाँ पर लगता (मिलता) है वह स्वनिरक्षदेश जाने।

टिप्पणी- स्वनिरक्ष देश अर्थात् स्थान ही स्वदेश का निरक्ष खस्वस्तिक होता है। यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-7 ही है। यही बात पूर्व में श्लोक-15 में कह दी गई है। उसी को यहाँ पुनः अन्य प्रकार से कहा गया है।

संस्कृत- स्वदेशगं खस्वस्तिकप्रोतं यत् ध्रुवप्रोतवृत्तम्, तत् स्वीयं याम्योत्तरवृत्त-नामकमिति। तत् निरक्षदेशे यत्र लग्नम्, स च प्रदेशः स्वकीयो निरक्षदेशो ज्ञातव्यः। अर्थात् यत्खस्वस्तिके ध्रुवप्रोतवृत्तं क्रियते, तत्तस्य याम्योत्तरवृत्तम् तथा याम्योत्तरवृत्तनाडीवृत्त-संपातस्तन्निरक्षखस्वस्तिकम्, वा निरक्षदेशस्तदापेक्षिक इति भावः।

निरक्षक्षितिजोन्मण्डलयोर्लक्षणम्-

वृत्ते च ये स्वस्वनिरक्षदेशाभ्यां खाङ्कभागै किल तत्कुजे ते।
तदैक्ययुग्मं तु निरक्षवृत्तेऽथोन्मण्डलं तत् स्वनिरक्षभूजम्।।49।।

भाष्य- स्वस्वनिरक्ष स्थान से 90अंश दूरी पर जो वृत्त होते हैं वे उन-उन के स्वस्वनिरक्ष क्षितिज होते हैं। स्व खस्वस्तिक से 90 अंश पर बनाये गये स्वक्षितिज तथा निरक्षक्षितिज के दोनों संपात बिन्दु, नाड़ीवृत्त पर एक ही बिन्दु होते हैं। वह स्वनिरक्षक्षितिज उन्मण्डलसंज्ञक होता है।

टिप्पणी- पूर्व में स्वक्षितिज बता दिया गया है। यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-8 ही है। स्वक्षितिज, स्वनिरक्षक्षतिज नामक उन्मण्डल के संपात बिन्दु पूर्व तथा पश्चिम स्वस्तिक होते हैं जो नाड़ीवृत्त पर ही स्थित होते हैं।

संस्कृत- यत्स्वदेशात् स्वखस्वस्तिकान्नवत्यंशैर्वृत्तम्, तत् स्वक्षितिजम्। तथा यन्निरक्षदेशात् नवत्यंशैर्यद्वृत्तं तत् तन्निरक्षक्षितिजम् तत्संपातद्वयं निरक्षवृत्तेऽर्थात् नाडीवृत्ते एकस्मिन्नेव बिन्दावस्ति। तत् स्वनिरक्षक्षितिजं वोन्मण्डलसंज्ञम्, गोलोपरि सौम्यभागस्य प्राधात्यात् तत्र स्वक्षितिजादुपरि समीपे च यन्मण्डलं तदुन्मण्डलमिति काल्पनिकं नामेति।

समस्थानपूर्वापरवृत्तयोर्लक्षणम्-

याम्योत्तर स्वे स्वकुजं तु यत्र लग्नं भवेत् तत्समसंज्ञचिह्नम्।
इत्थं समाख्यद्वयतोऽपि खाङ्कैर्यत्प्राक् परं तत्सममण्डलं स्यात्।।50।।

भाष्य- स्वदेश का याम्योत्तरवृत्त जहाँ पर स्वक्षितिज से मिलता (योग करता) है वह समसंज्ञकचिह्न स्मस्थानसंज्ञक होता है। इन दोनों समसंज्ञक चिह्नों से जो 90 अंश पर पूर्वापर वृत्त होता है वह सममण्डल होता है।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-12 ही है। पूर्व श्लोक-22 की व्याख्या भी देखें।

संस्कृत- स्वे याम्योत्तरवृत्ते यत्र स्वजं लग्नं क्षितिजे लग्नं तत् समसंज्ञचिह्न समस्थानसंज्ञ भेवत्, ततो नवत्यंशैर्यद्वृत्तं तत् पूर्वापरं वा सममण्डलं च स्यात्।

उपवृत्तलक्षणम्-

एवं समाख्यचिह्नाद्यत् तद्भवेदुपवृत्तकम्।।51।।
समाख्यमण्डलात् स्वस्वभुजांशान्तरितं च तत्।

भाष्य- सम स्थानों से भुजकोट्यंश व्यासार्धों से जो वृत्त निर्मित होते हैं वे उपवृत्तसंज्ञक होते हैं तथा वे सममण्डल से स्वस्वभुजांश तुल्य दूरी पर होते है।

टिप्पणी- ये श्लोक- सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-21-$\frac{1}{2}$ हैं। यहाँ कथित उपवृत्त जिस ग्रह से संबंधित होते हैं वे उसी ग्रह के उपवृत्त होते हैं। जो अग्रा के अग्र से संबंधित होते है वे उस अग्राग्र के उपवृत्त होते हैं। समवृत्त से ग्रहगत समप्रोतवृत्त में ग्रहउपवृत्त से अधिक जो चापांश होते हैं वे भुजसंज्ञक अंश होते हैं तथा वे ही उस वृत्त में अग्राउपवृत्त से जो अधिक अंश होते हैं वे अग्रांश होते हैं।

संस्कृत- समस्थानात् भुजकोट्यंशव्यासार्धेन यत् वृत्तं तत् उपवृत्तसंज्ञम्। तत् च समाख्यमण्डलात् स्वस्वभुजांशान्तरितं अस्ति। समवृत्तात् ग्रहगतसमप्रोतवृत्ते ग्रहोपवृत्ताधिका ये चांशास्ते भुजसंज्ञांशकाः। तथा तत एव तस्मिन् वृत्ते अग्रोपवृत्तावधिका येंऽशास्तेऽग्रांशा। ग्रहात्पूर्वापरवृत्तावधिः समप्रोतवृत्ते भुजचापम्। तत्कोट्यंशेन समस्थानाद्विहितवृत्तमुपवृत्तम्।

अक्षांशस्थानम्-

समाख्यनाडीवलयान्तराले यथाऽक्षसंज्ञाश्च तथैव वेद्याः।
उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तरे स्यादेवं द्वयोस्तद् बहुधाऽत्र गोले।।52।।

भाष्य- जिस प्रकार से समनामक वृत्त तथा नाड़ीवृत्त के मध्य में याम्योत्तरवृत्त में अक्षांशसंज्ञक होते हैं उसीप्रकार उन्मण्डल तथा क्षितिज के मध्य में अक्षांश होते हैं। ये दो-दो वृत्त बहुत से होते हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक-35 ही है। इस श्लोक में अक्षांशों का स्थान ही बताया है, उनकी परिभाषा नहीं कही है। इनकी परिभाषा अगले दो श्लोकों में कही है। यथा-

"स्वीये दिनार्धे चलसंस्कृतोऽर्कः
स्फुटस्तुलाजादिगतो यदा स्यात्।
तदा रवेर्ये नतभागकास्ते
पलांशका वा ध्रुवजोन्नतांशाः।।36।।
अर्कोन्नतांशा ध्रुवजा नतांशा
वा लम्बभाग यमसौम्यवृत्ते।
नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ
गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ।।37।।" इति

इनका अर्थ है कि- स्वदिनार्ध में अर्थात् स्वयाम्योत्तरवृत्त में अयनांशसंस्कृत स्पष्ट सूर्य जब तुला अथवा मेषारम्भ पर होता है अर्थात् निरक्षखस्वस्तिक पर होता है तब उसके जो नतांश होते हैं वे स्वस्थान के अक्षांश होते हैं। स्वनिरक्ष तथा खस्वस्तिक के अन्तर तुल्य स्वाक्षांश होते है। अथवा स्वस्थान पर ध्रुव स्थान के जो उन्नतांश होते हैं, वे भी स्वदेश के

अक्षांश होते हैं। अथवा स्पष्ट सूर्य निरक्षखस्वस्तिक पर स्थित होने पर जो उसके उन्नतांश होते हैं अथवा जो ध्रुव के नतांश होते हैं वे याम्योत्तर वृत्त में लम्बांश होते हैं गोल में नाड़ीवृत्त के उत्तर-दक्षिण भाग उत्तर तथा दक्षिण गोल होता है।

संस्कृत- यथा समवृत्तनाडीवृत्तयोर्मध्ये याम्योत्तरवृत्तेऽक्षांशास्तथैवोन्मण्डल-क्षितिजयोरन्तरे चाक्षांशाः स्युरेवं गोले द्वयोर्वृत्तयोर्बृहुधा भवन्ति।

स्वीये दिनार्धऽर्थात् स्वयाम्योत्तरवृत्ते, चलसंस्कृतोऽयनांश संस्कृतः स्पष्टरविर्यदा तुलाजादिगतः स्यात्, अर्थात् निरक्षखस्वस्तिके यदा स्पष्टरविः स्यात्तदा ये नतांशास्ते पलांशा इति स्पष्टम्। स्वनिरक्षखस्वस्तिकान्तरस्याक्षांशमितत्वात्, वा ध्रुवजोन्नतांशा ये तेऽप्यक्षांशाः।

अथ च स्पष्टरवौ निरक्षखस्वस्तिकस्थे येऽर्कोन्नतांशाः वा ध्रुवजा नतांशास्ते याम्योत्तरवृत्ते लम्बांशाः स्युः, शेषं सुगमम्।

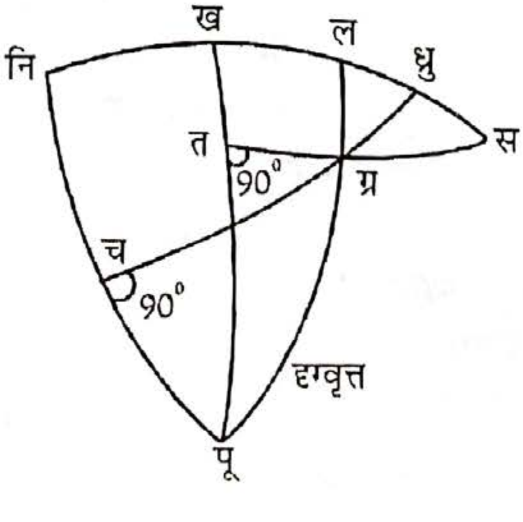
क्षितिजाद् यावती ध्रुवताराया उन्नतिः तावन्तोऽक्षांशाः भवति।

अक्षांशज्ञानम्-

पूर्वापरस्वस्तिकसक्तवृत्तं दृग्वृत्तनम्रांशगतं फलाख्यम्।
फलाख्यवृत्तस्थनतांशकानां या कोटिजीवा हारसंज्ञकः स्यात्।।53।।
त्रिज्यागुणे हारहृते भुजाख्यापमज्यके तत्फलचापके ये।
तदन्तरैक्यं समभिन्नदिक्त्वे दोःक्रान्तिमौर्व्योः स्युरिहाक्षभागाः।।54।।

भाष्य – पूर्वापरस्वस्तिक से गत वृत्त में गत नत, फलसंज्ञक होते हैं। फल नामक वृत्त में स्थित नतांशों की कोटिज्या हर संज्ञक होती है त्रिज्या से भुज तथा क्रान्तिज्या को क्रमशः गुणा करके हार से विभक्त करने से प्राप्त के चापों को, वे एक दिशा में हों तो घटाने से तथा भिन्न दिशा में हो तो युत करने से भुज तथा क्रान्ति के द्वारा अक्षांश प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी – यहाँ कथित श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना के श्लोक- 329-330 ही हैं। इनमें नवीन प्रकार से अक्षांश ज्ञात करना कहा है। अन्य प्रकाशित ग्रंथों में यहाँ लिखित श्लोक- 53 ही कह कर उसका अर्थ करने का प्रयास किया है। लेकिन यह अर्थ-हीन है। यह श्लोक अगले श्लोक- 54 के उपयोग के लिए संज्ञारूप प्रदर्शक है।



चित्र में पू ग्र ल फलवृत्त है जिसमें ग्र ल नतांश हैं। इसकी ज्या = ज्या ग्रल। इसके चाप की कोटिज्या = ज्या पू ग्र = हर। ग्र = ग्रह, ख = खस्वस्तिक, स = समस्थान, ख ल स = याम्योत्तर वृत्त है। ध्रु= ध्रुव है। नि= निरक्ष स्थान है।

त्रिभुज पू ग्र त में, $\frac{\text{ज्या ग्र पू त}}{\text{ज्या त ग्र}} = \frac{\text{ज्या पू त ग्र}}{\text{ज्या पू ग्र}}$

अतः ज्या ग्र पू त = $\frac{\text{ज्या पू त ग्र} \times \text{ज्या त ग्र}}{\text{ज्या पू ग्र}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{भुज}}{\text{हार}}$ = ज्या ख ल

इसी प्रकार त्रिभुज पू च ग्र में -

$\frac{\text{ज्या ग्र पू च}}{\text{ज्या च ग्र}} = \frac{\text{ज्या पू च ग्र}}{\text{ज्या पू ग्र}}$

अतः ज्या ग्र पू च= $\frac{\text{ज्या पू च ग्र} \times \text{ज्या च ग्र}}{\text{ज्या पू ग्र}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{ज्या क्रां}}{\text{हार}}$ =ज्या नि ल।

इन दोनों के चाप नी ल तथा ख ल बनाकर संस्कार करने से अक्षांश = नि ख प्राप्त होते हैं।

संस्कृत- पू ग्र ल फलवृत्ते तद्वृतीयनतज्या = ज्या ग्र ल। एतच्चापकोटिज्या = ज्या पू ग्र = हारः। पू ग्र त त्रिभुजे ज्याखल = $\frac{\text{त्रि} \times \text{भुज}}{\text{हार}}$, एवं पू च ग्र त्रिभुजे ज्या निल = $\frac{\text{त्रि} \times \text{ज्या क्रां}}{\text{हार}}$ । अनयोश्चापीकृतयोः संस्कारेण निख = अक्षांशा भवेयुः।

शर परिभाषा-

स्थानविम्बद्युरात्राख्यवृत्तान्तरे
क्रान्तिसंस्कारयोग्यः स्फुटाय शरः।
बिम्बकेन्द्रध्रुवप्रोतवृत्तेऽथवा
स्थानचिह्नं ध्रुवप्रोतवृत्ते सदा।।55।।
विवृत्तमन्दस्फुटगं च बिम्बं भमण्डलात् तद्धि कदम्बवृत्ते।
यदन्तरे सोऽस्ति शरोऽत एव तत्साधनं चास्ति मृदुस्फटेन्दोः।।56।।

भाष्य - अहोरात्रवृत्त में ग्रह का स्थानबिम्ब, शरस्फुट करने के लिए क्रान्तिका संस्कार करने के योग्य होता है। अथवा बिम्ब केन्द्र पर ध्रुवप्रोतवृत्त में सदा रहता है।

विवृत में जो मन्दस्फुट ग्रह रहता है, वह क्रान्तिवृत्त से कदम्बवृत्त में जितने अन्तर पर रहता है, वह अन्तररूप ग्रह का शर होता है। उसमें मूल में ग्रहगोलीय क्रान्तिवृत्त में मन्दस्पष्ट ग्रह होता है, अतः मन्दस्फुट ग्रह के शर का साधन योग्य होता है।

संस्कृत- बिम्बोपरितकदम्बप्रोतवृत्तं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तत् स्थानं उच्यते। कदम्बप्रोतवृत्ते स्थानबिम्बयोर्मध्ये शरो मध्यमः भवति तथा बिम्बोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रयोर्मध्ये शरो स्पष्टः भवति।

पूर्वापरयाम्योत्तरसूत्रयोः परिभाषा-

पूर्वापरस्वस्तिकसन्निबद्धं पूर्वापरं सूत्रमुदाहरन्ति।
यत्स्यात् समाख्यद्वयचिह्नबद्धं याम्योत्तरं तद्गदितं च सूत्रम्।।57।।

भाष्य – पूर्व तथा पश्चिमस्वस्तिक से निबद्ध सूत्र पूर्वापरसूत्र कहा जाता है और जो दोनों समस्थानों (उत्तर तथा दक्षिण) से निबद्ध सूत्र होता है उसको, दक्षिणोत्तर सूत्र कहते हैं।

टिप्पणी – यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना के सूत्रप्रकरण का श्लोक- 241 ही है।

संस्कृत- पूर्व तथा पश्चिम स्वस्तिकद्वयगतं यत् सूत्रं तत् पूर्वापर सूत्रमं गदितं। एवं समस्थानद्वय सन्निबद्धं सूत्रम् याम्योत्तरं सूत्रम् स्यात्। याम्योत्तरं समसूत्रमित्यर्थः।

उदयास्तक्षितिजलक्षणम्-

स्वभूमिपृष्ठोर्ध्वगदृष्टिचिह्नात् स्पृष्ट्वैव यद् भूमिजपृष्ठवृत्तम्।
गतं समन्तात् ग्रहगोलगर्भे तद्वृत्तमस्तोदयजं कुजं हि।।58।।
तथैव यद्भूमिजपृष्ठवृत्तस्पर्शेन वृत्तं विहितं च भूमौ।
वृत्तं तदस्तोदयजं वदन्ति जनस्तु भूभूजगमेव बिम्बम्।।59।।
नीलाम्बरीयक्षितिजस्वरूपासक्तं सदा पश्यति दृष्टिजैक्यात्।
नीचोच्चभूमेर्वशतः कुसंस्थोदयास्तभूजं हि विभिन्नमस्मात्।।60।।

भाष्य – स्वभूमिपृष्ठ से आगे दृष्टिचिह्न से भूबिम्ब को स्पर्श करते हुए सूत्र समानरूप से चारों (सब) ओर ग्रहगोल में जहाँ-जहाँ लगते हैं, उन-उन बिन्दुओं से बद्धसूत्र के वृत्त से वह उसका (ग्रहका) अस्तोदय सूत्र होता है। इसी प्रकार भूमि के पृष्ठ वृत्त को स्पर्श करके अर्थात् दृष्टिस्थान से भूमि के बिम्ब का स्पर्श करते हुए जाने वाले सूत्रों को मिलाने वाला जो वृत्त होता है वह उदयास्त क्षितिज होता है। उसके भूतल को बढ़ाने से जहाँ पर वह आकाश को लगता हुआ दिखता है, उतना ही बिम्ब मनुष्य देखते हैं। परन्तु नीची-ऊँची भूमिस्थ दृष्टि भेद से उदयास्त क्षितिज भिन्न-भिन्न होते हैं।

टिप्पणी – यह श्लोक सि. त. वि. के मध्यमा. के श्लोक 191 से 194 ही हैं।

संस्कृत- स्वभूमिपृष्ठात ऊर्ध्वगतात् दृष्टिचिह्नात् भूबिम्ब स्पृष्ट्वा समन्तात् चतुर्दिक्षु ग्रहगोले यत्रतत्र लग्नानि तत्तद्बिन्दुबद्ध सूत्रस्य वृत्तत्वात् तत् अस्तोदयकुजं स्यात्। तथैव भूमिजपृष्ठवृत्तस्पर्शेन अर्थात् दृष्टिस्थानात् भूबिम्बस्पर्शं कृत्वा निःसृतैः सूत्रैश्छेदनात् यद्वृत्तं तदस्तोदय क्षितिजं तस्य भूतलं वर्धितं सत् यत्र नीलाम्बरगोले लग्नम्, तत्रस्थमेव बिम्बं जनः पश्यति। परन्तु नीचोच्चभूमिस्थ दृष्टिभेदवशात् उदयास्तक्षितिजं विभिन्नंविभिन्न भवति।

स्वपृष्ठस्थाने स्थितं यत् दृष्टिचिह्नं तस्मात् भूबिम्बे नवत्यंशैर्यद्वृत्तं तत् स्वीयं गर्भक्षितिजम्।

उदयास्तव्याससूत्रयोः परिभाषा-

द्युरात्रवृत्तक्षितिजैक्यके ये पूर्वापरस्थे तु तयोर्निबद्धम्।
सूत्रं च तत्स्यादुदयास्तसंज्ञमुन्मण्डलाहर्निशमण्डलैक्ये।।61।।
ये प्राक्परस्थे च तयोर्निबद्धं तद्व्याससूत्रं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
ऊर्ध्वाधरस्वस्तिकयोश्च बद्धं एवं तदूर्ध्वाधरसूत्रमुक्तम्।।62।।

भाष्य- अहोरात्रवृत्त तथा क्षितिज के सम्पात से जो पूर्व तथा पश्चिम के स्थान हैं, उनसे निबद्ध सूत्र उदयास्त संज्ञक होता है। तथा अहोरात्रवृत्त और उन्मण्डल के सम्पात से जो पूर्व तथा पश्चिम के स्थान हैं, उनसे निबद्ध सूत्र को ज्ञानी जन व्याससूत्र (अहोरात्रवृत्त का) कहते हैं। और ऊर्ध्व तथा अधः स्वस्तिकों से निबद्ध सूत्र को उर्ध्वाधरसूत्र कहते है।

टिप्पणी - यहाँ कथित श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. के सूत्र-प्रकरण के श्लोक- 242-243 ही हैं।

संस्कृत- यत् सूत्रं अहोरात्रक्षितिजवृत्तसम्पातद्वगतं तत् उदयास्तसूत्रं स्यात्। तथा च अहोरात्रवृत्तउन्मण्डलवृत्तस्य सम्पातद्वयगतं सूत्रं व्याससूत्रं कथ्यते। एवमेव उर्ध्वाधरस्वस्तिकस्थनयोः गतं सूत्रमूर्ध्वाधरसूत्रं कथ्यते।

अयनवृत्तपरिभाषा-

नाड़ीभवृत्तसम्पातात् खाङ्कैर्वाऽयनमण्डलम्।
पृष्ठाख्यकेन्द्रयोस्तत्तु विलग्नं नियतं तयोः।।63।।

भाष्य- नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के सम्पात स्थान (पूर्वापर समस्थान) से नब्बे अंश पर स्थित वृत्त होता है जो इन दोनों (क्रान्ति-नाड़ी) वृत्तों के पृष्ठ केन्द्रों (कदम्ब-ध्रुव) से लगता हुआ स्थित होता है, वह अयनमण्डल संज्ञक होता है।

टिप्पणी- यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक- 19 ही है। इसका अन्यलक्षण इसी अध्याय के श्लोक- 17-18 में कहा है। यथा-

''-----------------तयोः कदम्बद्वयसक्तवृत्तम्।।17।।

लग्नं च तत् स्यादयनाख्यमत्र नाडीभवृत्तान्तरकं परं स्यात्।।$\frac{1}{2}$।।'' इति।

यहाँ कहा है कि छः राशि अन्तर पर स्थित दोनों कदम्बों पर से होकर जो वृत्त होता है वह आयनसंज्ञक वृत्त होता है। यह दक्षिण तथा उत्तर आयनों का प्रवृत्तक होने से अयनसंज्ञक कहा गया है। इस वृत्त पर नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त लम्बवत् होने से उनके मध्य में परम अन्तर 24 अंश का होता है।

मेषारम्भ से तीन राशि आगे कर्क्यारम्भ का स्थान तथा पूर्व में (पीछे) मकराम्भ पर, दोनों स्थान यथा क्रमशः दक्षिण तथा उत्तर अयन बिन्दु होते हैं।

संस्कृत- क्रान्तिवृत्तनाडीवृत्तयोः सम्पातस्थानात् यद् वृत्तं नवत्यंशैरन्तरम् स्थितं तथा पृष्ठाख्यकेन्द्रयोध्रुवकदम्बयोः तत्तु विलग्नं तत् अयनमण्डलम् कथ्यते। तयोरयनस्थानयोः षड्भान्तरगतत्वात् संलग्नं कदम्बद्वयप्रोतवृत्तं यत्तदयनाख्यमस्मादेव याम्यसौम्यायनयोः प्रवृत्तेर्युक्तं नाम। अत्रवृत्ते नाड़ीवृत्तक्रान्तिवृत्तयोरन्तरकं परम्-परमान्तरम्, जिनांशमितं स्यात्, सम्पातात्तदवृत्तस्य नवत्यंशान्तरितत्वात्।

तथाच आयनसन्धिलक्षणम्-

'यन्मेषादितः प्राक् त्रिगृहान्तरेऽपि।।
भवेच्च तत्कीटमुखं तथा यत्पश्चाच्च तन्नक्रमुखं सदैव।
ते चायने दक्षिणसौम्यसंज्ञे।।'

दृङ्मण्डललक्षणम्-

एवं खमध्यखेटर्क्षोपरिगं तद्भवेदिह।
दृग्मण्डलं तच्च चलं भग्रहानुगतं किल।।64।।

भाष्य- स्व खमध्य तथा ग्रह (नक्षत्र) के ऊपर से गत जो वृत्त होता है वह ग्रह का दृग्मण्डल होता है। यह ग्रह-नक्षत्र के साथ चलता हुआ होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक- 26 ही है। इसके ओर भी लक्षण हैं जो अगले श्लोक में वहीं पर कहे हैं। यथा-

''यद्गर्भभूजे परिकल्प्य केन्द्रं ग्रहर्क्षगं खाङ्कलवैस्तु वृत्तम्।
दृङ्मण्डलं तत् प्रवदन्ति यद्वत् समाख्ययाम्योत्तरकोणगानि।। इति।

इसका अर्थ है कि - गर्भक्षितिज में पूर्वस्वस्तिक से अथवा पश्चिमस्वस्तिक से जिस भाग में ग्रह दिगंश होते हैं, उससे भिन्न दिशा में दिगंशकोटि तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर जो नब्बे अंश पर वृत्त बनाते हैं वह ग्रह या नक्षत्र पर से गत दृङ्मण्डल होता है। जिस प्रकार से समवृत्त, याम्योत्तर वृत्त तथा कोणवृत्त ये सभी समय के भेद के अनुसार होते हैं, उसी प्रकार दृग्मण्डल भी होता है।

संस्कृत- ग्रहगतं खमध्यप्रोतं यत्तद्दृग्वृत्तमित्यर्थः। तत् इष्ट समये वेध्यनक्षत्र-ग्रहयोरुपरी समानीतं सत् तच्च तलं भग्रहानुगतं किल। गर्भक्षितिजे पूर्वस्वस्तिकतो वा पश्चिमस्वस्तिकतो यद्भागीया दिगंशास्तद्भिन्नदिशि दिगंशकोट्यंशमितान्तरे केन्द्रं परिकल्प्य यत् नवत्यंशैर्वृत्तं तद्ग्रहर्क्षगं दृङ्मण्डलम्। यथाहि समवृत्तं याम्योत्तरवृत्तं कोणवृत्ते चैतान्यपि समयभेदवशेन दृङ्मण्डलान्येवेति।

दृक्क्षेपवृत्तलक्षणम्-

दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नसंस्थं दृक्क्षेपवृत्तं प्रवदन्ति सन्तः।।

भाष्य- वित्रिभलग्न स्थान पर जो दृग्मण्डल होता है उसको सन्तगण, दृक्क्षेपवृत्त कहते हैं।

टिप्पणी- यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना के श्लोक- 230 का द्वितीय भाग है। लग्न में से तीन राशि अर्थात् 90 अंश घटाने से वित्रिभलग्न प्राप्त होता है। उस स्थान पर से गत दृग्वृत, दृक्क्षेपवृत्त कहलाता है। लग्न के अग्रांश ही वित्रिभलग्न के दिगंशकोट्यंश होते हैं तथा लग्न के अग्राकोट्यंश ही वित्रिभ लग्न के दिगंश होते हैं। वित्रिभलग्न क्रान्तिवृत्त में भ्रमण करते समय कदाचित दक्षिणोत्तरवृत्त से पूर्व की ओर तथा कदाचित पश्चिम की ओर होता है। यदि उदयलग्न उत्तरगोल में होता है तो वह पूर्व में होता है अन्यथा पश्चिम में होता है। आकाश मध्य में वित्रिभलग्न के ऊपर से गत दृक्क्षेपमण्डल जहाँ वित्रिभ पर लगता है वहाँ से आकाश मध्य की दूरी पर रवि का दृक्क्षेप चापांश होता है। मध्यलग्न तथा त्रिभोनलग्न के अन्तरांशों की ज्या क्रान्तिवृत्त में भुज होती है। उदयलग्नस्थ क्रान्तिवृत्त का प्रदेश पूर्वस्वस्तिक से उसके अग्रान्तर पर उत्तर-दक्षिण में होता है। इसी प्रकार अस्तलग्न प्रदेश पश्चिम स्वस्तिक से दक्षिणोत्तर में होता है। त्रिभोनलग्न की दृग्ज्या दृक्क्षेप नामक होती है।

संस्कृत- वित्रिभ लग्नोपरिगं दृग्मण्डलं दृक्क्षेपवृत्तम् कथ्यते। लग्नाग्रांशा एव वित्रिभलग्नदिगंशकोट्यंशाः। लग्नाग्राकोट्यंशास्तु वित्रिभदिगंशाः। त्रिराश्यूनम् लग्नं वित्रिभलग्नं त्रिभहीन लग्नं वा उच्यते। वित्रिभलग्नं क्रान्तिवृत्ते तद्भ्रमवशात् कदाचिद्दाक्षिणोत्तरवृत्तात् पूर्वतः कदाचित् पश्चिमो भवति। यद्युदयलग्नमुत्तर गोले तदा पूर्वतो भवति। तदन्यथा पश्चिमत इत्यर्थः। खार्धाद्वित्रिभलग्नोपरिगतं दृक्क्षेपमण्डलं यत्र वित्रिभे लगति तत्खर्धान्तरेऽर्कदृक्क्षेपचापांशाः। यत्र विमण्डले लगति तत्खार्धान्तरे चन्द्रदृक्क्षेपचापांशाः। तज्ज्ये तयोर्दृक्क्षेपौ। मध्यलग्नत्रिभोनलगनान्तरांशज्या क्रान्तिवृत्तस्थो भुजः। उदयलग्नस्थ-क्रान्तिवृत्त प्रदेशः प्राकस्वस्तिकात् तदग्रान्तरेण उत्तरदक्षिणो भवति। एवमस्तलग्नप्रदेशः परस्वस्तिकात् दक्षिणोत्तरः। तदनुरोधेन च त्रिभोनलग्नप्रदेश क्रान्तिवृत्तीययाम्योत्तररुपतद्दृग्वृत्तं क्षितिजे याम्योत्तरवृत्तक्षितिजसम्पातात् तदग्रान्तरेण लग्नमवश्यं भवति। त्रिभोनलग्नस्य शङ्कुदृग्ज्ये दृग्गति दृक्क्षेपतुल्ये न भवतः। किन्तु दृग्गति दृक्क्षेपाभ्यां क्रमेण न्यूनाधिके भवतः सर्वदा।

वित्रिभदशमलग्नान्तरांशानयनमाह-

लग्नाग्रकांशज्यकया खलग्ननतांशजीवा गुणिता विभक्ता।
त्रिभज्यया तत्फलचापभागाः खवित्रिभाङ्गान्तरबाहुभागाः।।

ज्या (मध्यलग्न ∽ वित्रिभलग्न)

$$= \frac{\text{ज्या (मध्यलग्न-खस्वस्तिक)} \times \text{ज्या लग्नाग्रा}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (खलग्न नतांश)} \times \text{ज्या (लग्नाग्रा)}}{\text{त्रि}}$$

अस्याश्चापम् मध्यलग्नवित्रिभ लग्नान्तरमानम्।

नतांशोन्नतांशयोः परिभाषा-

ऐक्यं दिगैक्येऽन्तरकं विभेदेचैवं हि तत्संस्करणप्रकारात्।
क्रान्त्यक्षसंस्कारमिता नतांशास्तदूनखाङ्काद्युदलोन्नतांशाः।।65।।

भाष्य- एक दिशा में होने पर योग तथा भिन्न दिशा में होने पर अन्तर करने के संस्कार करने के प्रकार से ही क्रान्ति तथा अक्षांश का संस्कार करने से नतांश प्राप्त होते हैं। इनको नब्बे अंश में से घटाने से दिनार्ध के उन्नतांश होते हैं।

टिप्पणी– यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक– 189 ही है। इसमें स्व अक्षांश तथा सूर्य क्रान्ती के संस्कार करने की विधि बताकर रवि के नतांश तथा उन्नतांश ज्ञात करना बताया है।

भूगर्भ से स्वपृष्ठ को स्पर्श करते हुए सूत्र आकाश में जहाँ पर लगता है वहाँ खमध्य होता है। उस पर स्व दृग्मण्डल होता है ग्रहं के जो नतांश होते हैं वे दृग्ज्या के चाप होते हैं। तथा जो उन्नतांश हैं वे शङ्कु के चाप हैं तथा गर्भक्षितिज से ज्ञात होते हैं। सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना में इसी प्रकार कहा है। यथा-

''कुगर्भात् स्वीयपृष्ठस्पृक् सूत्रं यत्राम्बरं स्पृशेत्।
खम्यस्तत्र विज्ञेयस्तस्मात् दृङ्मण्डले स्वके।।42।।
नतांशका ये खचरस्य नूनं ते दृग्ज्यकाचापभवास्तथाऽत्र।
ये चोन्नतास्ते किल शङ्कुचापभवास्तुगर्भक्षितिजाच्च वेद्याः।।43।।''

दृग्वृत्त में क्षितिज से ग्रहबिम्ब तक उन्नतांश होते हैं तथा ये अहोरात्रवृत्त में होते हैं। खमध्य से बिम्ब तक दृग्वृत्त में नतांश होते हैं। याम्योत्तरवृत्त से बिम्बतक अहोरात्रवृत्त में नतककालांश होते हैं।

संस्कृत– दृग्वृत्ते क्षितिजाद्बिम्बावधि उन्नतांशाः स्युः। एवमहोरात्रवृत्ते उन्नतास्त्वंशाः। तथा खमध्याद्बिम्बावधि दृग्वृत्तेनतांशाः। याम्योत्तरवृत्ताद्बिम्बावधि द्युरात्रवृते नतकालांशा भवन्ति। इष्टकाले क्षितिजाच्च खेटो दृङ्मण्डलाहर्निशवृत्ते योगे वर्तते। दृग्गोलस्य यदूर्ध्वखण्डं तत् सदैव गर्भक्षितिजोर्ध्वंम्। अथ च येषां भूपृष्ठचिह्नम्, दृष्टिचिह्नम्, तेषां तथा न, अपि तु तेषां गर्भक्षितिजादुपरि भूव्यासार्धान्तरेण समन्ततः क्षितिजसमस्ति, अर्थात् पृष्ठस्थानात् गर्भक्षितभूतलसमानान्तरभूतलच्देदितदृग्गोलप्रदेशः पृष्ठक्षितिजमिति। तदूर्ध्वणं यद्ग्रहादिकं तत् तेषां दृश्यम्, अन्यत् किन्तु पृष्ठगर्भक्षितिजान्तरगतं न दृश्यम्। अतो गर्भक्षितिजात् ये ग्रहोन्नतांशास्ते गर्भपृष्ठभूजान्तरेण कुदलेन विहीनितास्तदा पृष्ठक्षितिजात् ग्रहोन्नतांशाः स्युः, शेषं स्पष्टम्।

दृग्गतिदृक्क्षेपपरिभाषा-

दृग्वृत्तगार्कोन्नतभागजीवा त्रिभज्यया संगुणिता विभक्ता।
लग्नार्कयोरन्तरजीवया तच्चापांशका दृग्गतिचापभागाः।।66।।
तेषां च कोट्युद्भवशिञ्जिनी स्यात् दृक्क्षेपकः खाङ्कनतांशदिक्कः।

भाष्य– दृग्वृत्त में गत सूर्य के उन्नतांशों की ज्या को त्रिज्या से गुणा करके सूर्य तथा लग्न के अन्तर की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त का धनु दृग्गति के चाप के अंश होते हैं। इसकी कोटिज्या दृक्क्षेप होती है, यह मध्यलग्न नतांश की दिशा में होती है।

टिप्पणी– यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना का श्लोक– 224–226 ही है। अन्य पुस्तकों में इस श्लोक– 66 की द्वितीय पंक्ति ही दी हुई है तथा उसका ही अर्थ कहा है, जो अशुद्ध है। सूर्य के उन्नतांश की ज्या शंकुसंज्ञक होती है। अत: सूत्ररूप में दृग्गति ज्या

$$= \frac{\text{रवि उन्नतांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{ज्या (रवि–लग्न)}}$$

, इसका चाप दृग्गतिचापांश होते हैं तथा इसको 90 में से घटाने से प्राप्त की ज्या दृक्क्षेप होता है।

संस्कृत– दृग्वृत्तगत अर्कोन्नतभाग जीवा शंकुसंज्ञकं त्रिज्या संगिता लग्नार्कयोरन्तर–ज्याया विभक्ता अस्यचापांशका दृग्गति चापांशा:। इमें खाङ्कच्युतास्तदा दृक्क्षेपचापोत्थ लवा। दृग्गति चापांशा: कोटिज्या दृक्क्षेप: स्यात् परं स च मध्यलग्ननतांशदिक्क इति।

आक्षायनवलन परिभाषा–

रविचिह्नात् त्रिभे वृत्तं त्रिज्यया तत्कुजाभिधम्।
विषुवत्क्रान्तिवृत्तान्तस्तद्वृत्तेऽन्तरमायनम्।।67।।
विषुवत्समवृत्तान्तस्तदवृत्तौ चाक्षजं तथा।
भवृत्तसमवृत्तान्तस्तद्वृत्तौ वलनं स्फुटम्।।68।।

भाष्य– ग्रहस्थान से 90 अंश व्यासार्ध से बनाया गया वृत्त ग्रह का क्षितिजवृत्त होता है। वहाँ पर ग्रह का पूर्वापरवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के अन्दर अन्तर स्पष्टवलन होता है। तथा पूर्वापरवृत्त तथा नाड़ीवृत्त में अन्तरित ग्रहक्षितिज में अक्षवलन होता है। नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के अन्तर तुल्य ग्रहक्षितिज में अयनसंज्ञक वलन होता है।

टिप्पणी – यहाँ कथित श्लोक सि. त. वि. के सूर्यग्रहणाधिकार के वलनप्रकरण के श्लोक–282–283 हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में जो सि. शि. के ग्रहणवासनाध्याय के श्लोक–47 से 49 कहे हैं, वे स्पष्ट नहीं है अत: यहाँ स्पष्ट अर्थ देने वाले श्लोक कहे हैं। यथा–

''कदम्बध्रुवसूत्रान्तरायनं च त्रिभे ग्रहात्।
कदम्बसमसूत्रान्त: स्फुटं सर्वदिशां च तत्।।
अथवा परित: खेटात् खाङ्काभागान्तरे न्यसेत्।
त्रिज्यावृत्तं ततस्तत्र विषुवत्समवृत्तयो:।।
मध्येऽक्षवलनं विद्याद्विषुवत्क्रान्तिवृत्तयो:।
अन्तरं चायनं क्रान्तिसमवृत्तान्तरे स्फुटम्।।'' इति

यहाँ जो कहा है उसका वही अर्थ है जो यहाँ ऊपर कहा है।

संस्कृत– वलति सञ्चलतीति वलनम्। अत्र तु ग्रहणस्पर्शदिग्ज्ञानार्थं यथार्थपूर्वापर–दिश: कियदंशान्तरे याम्यसौम्ये विभागे स्पर्शमौक्षौ भविष्यत इत्यर्थं तदन्तररुपस्पष्टवलनस्य

सम्पूर्णस्यैकदैव ज्ञानप्रयासदर्शनात् लाघवार्थमायनाक्षनाम्ना खण्डद्वयस्य पृथग्पृथगानयनं विधाय तत्संस्कारणेन स्पष्टवलनं साधितं प्राचीनैराचार्यवर्यैः।

तत्र ग्रहस्थानन्नवत्यंशव्यासार्धवृत्तं ग्रहक्षितिजसंज्ञं, तत्र ग्रहपूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्तरं स्पष्टवलनम्। तत्र तु पूर्वापरनाड़ीवृत्तान्तरमितं ग्रहक्षितिजे चाक्षजं वलनं, तथा नाड़ीवृत्तापम-वृत्तान्तरमितं तत्रैवायनसंज्ञवलनम्।

गोलसन्धिर्नाम नाडीवृत्तक्रान्तिवृत्तयोः सम्पातः ततो विभिन्नस्थले नाड़ीवृत्ते यत्र रविबिम्बस्थितिसम्बन्धो, यदि नास्ति तदा तत्रायनं वलनं कथं नैवेति। अपूर्व स्वनिर्मितं नवीनं नार्षमिति भावः।

ग्रहगतकदम्बप्रोतध्रुवप्रोतवृत्तवृत्तयोरन्तर्गतांशा वा ग्रहक्षितिजे क्रान्तिवृत्तनाडीवृत्तयो-रन्तर्गतांशा आयनकालांशा इति। तत्र नाडीवृत्ताद्यद्दिक क्रान्तिवृत्तं ग्रहक्षितिजे तद्दिक्कमायन-वलनमिति।

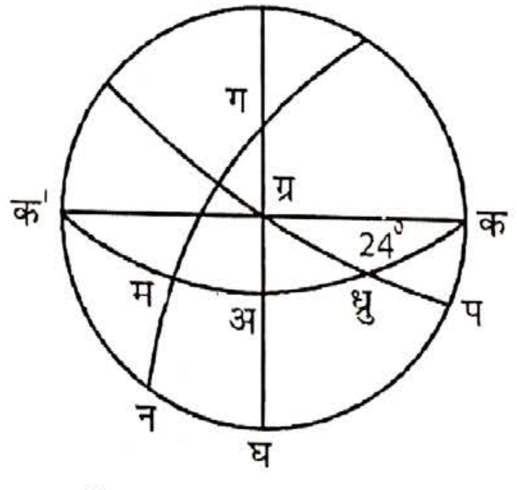
यत्र ग ग्र अ घ = क्रान्तिवृत्तम्, तत्र ग्र = ग्रहस्थानम्। ग म न = नाड़ीवृत्तम्। क = कदम्बम्, ध्रु = ध्रुवस्थानम्। ध्रुग्र = ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्तम्। क ध्रु अ म = अयनप्रोतवृत्तम्। अथ ग्र केन्द्रात् न्वत्यंश कृतं वृत्तं ग्रहक्षितिजम् = क' न घ प क।

तत्र **आयनवलनम्** = **क प** । ग्र ध्रु = द्युज्याचाप, ग्र अ = ग्रहकोट्यंशाः।

$\therefore$ क घ = 90° = प न, अतः **न घ** = **प क** = **आयनवलनम्**। चापीयत्रिभुजे

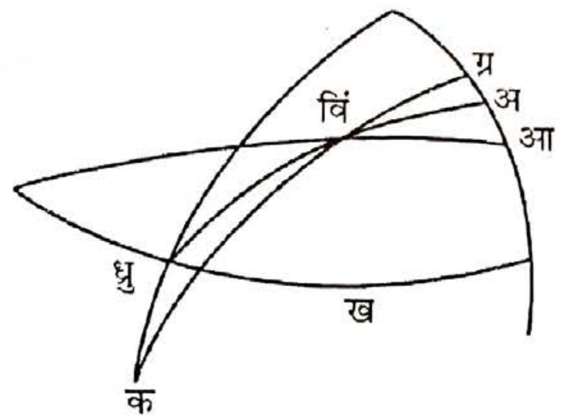
ग्र क ध्रु, त्रिकोणमित्या ज्या क ग्र ध्रु = $\dfrac{\text{कोज्या ग्र अ} \times \text{ज्या क ध्रु}}{\text{ज्या ग्र ध्रु}}$

$= \dfrac{\text{कोज्याग्र} \times \text{प्रज्याजिनं}}{\text{द्यु}}$ = ज्या आयनवलनं।



अथ बिम्बोपरिगतसमप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्तयोर्बिम्बत्रिज्यावृत्ते यदन्तरे तदेवाक्षवलनम्। वा तद्वृत्तयोत्पन्नकोणऽप्याक्षवलम्। अत्र ग्र अ आ = भवृत्तम्। क = कदम्बः। ध्रु = ध्रुवः। स = समंस्थानभ्। विं = बिम्बम्। स ध्रु = अक्षांशाः याम्योत्तरवृत्तम्।

अतः ज्या स विं ध्रु = आक्षवलनज्या। अस्य चापं आक्षवलनांशाः।



ग्रहबिम्बान्नवत्यंशेन विहितवृत्तं ग्रहक्षितिजवृत्तं भवति। तस्मिन् क्रान्तिनाडीवृत्तान्तरं अयनवलनांशाः भवति। नाडीपूर्वापरान्तरम् आक्षवलनम् उच्यते। ग्रहक्षितिजे ग्रहबिम्बगतध्रुव–प्रोतकदम्बप्रोतयोरन्तरम् आयनवलनम् उच्यते। ग्रहगतध्रुवप्रोतसमप्रोतवृत्तान्तरमाक्षजवलनमिति। एवं च समप्रोतकदम्बप्रोतवृत्तान्तरं स्पष्टवलनम् कथ्यते।

दृक्कर्मप्रयोजनम्–

नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।
शृङ्गोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्फुटम्।।69।।

भाष्य – ग्रह–नक्षत्रों के योग तथा ग्रहों के उदयास्त के साधन तथा चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति के साधन, इनमें अयन तथा अक्ष दोनों दृक्कर्म को करने से वे स्फुट होते हैं।

टिप्पणी – यहाँ कथित श्लोक सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्य का श्लोक– 11 ही है।

संस्कृत– नक्षत्रध्रुव कारणम् आयनदृक्कर्म संस्कृतानामेव उक्तत्वात् आयनदृक्कर्म न कार्यमिति ध्येयम्। ग्रहाणाम् उपलक्षणत्वात् नक्षत्राणामपि तयोः साधननिमित्तं ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा देयम्। युतौ तु समप्रोत चलवृत्ते युगपद्दर्शनार्थं तत्परिणामस्य आवश्यकत्वात्। शृङ्गोन्नतिनिमितं चन्द्रस्य।

नतिलम्बनपरिभाषा–

यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम्।
तद्दृग्वृत्तेऽन्तरं चन्द्रभानवोः पूर्वापरं तु तत्।।70।।
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम्।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्यग्दक्षिणोत्तरा।।71।।
यत् पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम्।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते।।72।।

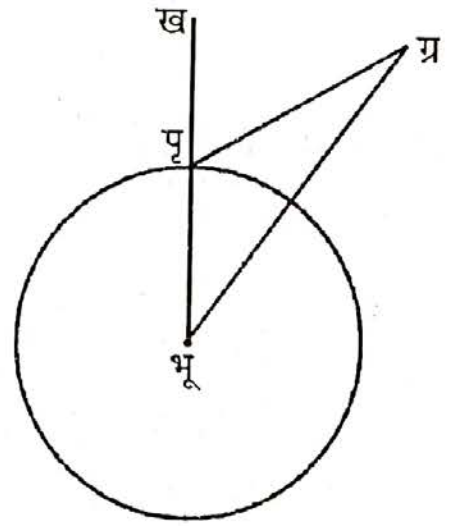
भाष्य – जहाँ कहीं सूर्य से चन्द्रमा नीचे रहने से लंबित रहता है तब उनके दृग्मण्डल में सूर्यचन्द्रमा का अन्तर पूर्वापर में रहता है। उनका पूर्वापर में तथा याम्योत्तर में गत दोनों अन्तर होते हैं, वहाँ अपमण्डल पूर्व में तथा उसके लम्बवत् दक्षिणोत्तर होता है। जो

पूर्वापर में उनका अन्तर होता है वह लम्बन नामका होता है तथा जो याम्योत्तर में अन्तर होता है, उसको नतिसंज्ञक कहते हैं।

टिप्पणी - यहाँ कथित ये श्लोक सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहणवासनाध्याय के श्लोक- 21 से 23 हैं। इनमें लम्बन तथा नति की स्पष्ट परिभाषा कही है, अतः हमने इनको पूर्णता के लिए कहा है। प्रकाशित अन्य पुस्तकों में कथित श्लोक पूर्ण नहीं है।

अमान्त काल में शराभाव होने से भूगर्भ सूत्र तथा भूपृष्ठसूत्र एक ही सूत्र होने से नीचे स्थित चन्द्रमा से उसके ऊपर स्थित सूर्य आच्छादित रहता है। परन्तु भूपृष्ठ पर तब किसी-किसी स्थान पर वे एक दृष्टि सूत्र में नहीं होते। शर होने पर गर्भीय अमान्तकाल में वे एक कदम्बप्रोत वृत्त में ही गत होते हैं। अतः यहाँ गर्भीय-पृष्ठीय योग के पश्चात् ही उनका भूपृष्ठ से लम्बन कहा गया है।

यदि भू- भूगर्भ हो तथा पृ-पृथ्वी पर दृश्य हो तथा ग्र-ग्रह हो तो भू ग्र पृ कोण ग्रह का लम्बन होता है। यदि ग्रह क्षिति पर स्थित हो तब वह क्षितिज लम्बन होता है।



अन्य प्रकाशित ग्रन्थों में सि. शि. ग्रहणवासनाध्याय के श्लोक- 18-19 को नतिपरिभाषा के लिए कहा गया है, जबकि ये नति साधन करने के लिए हैं तथा अधूरे हैं। दर्शान्त में त्रिभोनलग्न की दृग्ज्या दृक्क्षेप होती है। ब्रह्मगुप्त मत से इन चापांशों को वित्रिभ लग्न के शर में संस्कार करने से चंद्रदृक्क्षेपचापांश होते है। उन वृत्तों का खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांशों से नत बिन्दु बनाये वे वित्रिभसंज्ञक हैं। वहाँ से पूर्ववत् भूमध्य से तथा भूपृष्ठ से सूत्र बनाकर लम्बन लिप्तिका ज्ञात करे, वे नति कला होती हैं।

संस्कृत- अमान्ते चन्द्रस्य शरभावे सति तद्गर्भसूत्रगतानां जनानां कुगर्भैकसूत्रे एवाधः स्थो विधुरुर्ध्वस्थं रविं पिधत्ते आच्छादयति। तदानीं तयोरेकसूत्रगतकेन्द्रत्वादिति। परन्तु कुपृष्ठे तदानीं यत्र तत्र स्थाने तयोर्दृष्टिसूत्रैक्यान् न योगोऽर्थादधः स्थचन्द्रेणोर्ध्वस्थ-सूर्यस्याच्छादनं न भवति। अपि तु यदा रविचन्द्रौ एकस्मिन् पृष्ठीयदृष्टिसूत्रे भवतस्तदैवाधः कक्षास्थचन्द्रबिम्बेनोर्ध्वस्थसूर्यबिम्बस्य आच्दादनं संभवति। शरसद्भावे तु गर्भीयामान्ते-तावेककदम्बप्रोतवृत्तगतौ भवतोऽर्थाद्गर्भीयचन्द्रस्थानेन रविस्थानाच्छादनम्। तत्रापि

मानैक्यार्धाल्पशरे चन्द्रबिम्बैकदेशेनोर्ध्वस्थसूर्यबिम्बैकदेशस्याच्छादनम्। परन्तु पृष्ठस्थद्रष्टुस्तदा नैव तयोर्योगदर्शनं वित्रिभादन्यत्र भवति। किन्तु चन्द्रगोलपरिणत पृष्ठीयरविबिम्बकेन्द्रगत-कदम्बप्रोतवृत्ते चन्द्रकेन्द्रं यदा भ्रमन्नायाति तदा पृष्ठस्थद्रष्टुर्जनितो योगः। अतोऽत्र गर्भीयपृष्ठीय योगयोरन्तमेव लम्बनं निरुक्तम्।

भूपृष्ठग्रहप्रोतरेखा-भूमध्यग्रहप्रोतरेखा समुत्पन्न कोणः भू ग्र पृ (द्रष्टव्य चित्रः) ग्रहस्य दैनिकलम्बनमुच्यते। यदि ग्रहो ज्योतिः पिण्डो वा क्षितिजे लग्नस्तर्हि तस्य तत्कालिकलम्बनं क्षैतिज लम्बनं कथ्यते।

सिद्धान्ततत्त्वविवेके सूर्यग्रहाधिकारे लम्बनस्वरूपं कथिता यथा-

"कुगर्भैकसूत्रे रविं संपिधत्ते विधुस्तद्गतानाममान्ते तदानीम्।
नृदृग्जैकसूत्रे कुपृष्ठेऽत्र यत् स्यात्तयोरन्तरं लम्बनं तन्निरुक्तम्।।" इति

अन्य प्रकाशित ग्रन्थेषु नतिलिप्ताज्ञानार्थम् कथिता यथा-

"ये कक्षा मण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि।।
तच्चापंशैर्नतौ बिन्दुकृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः।।" इति।

ये तत्र कक्षामण्डले ते दृक्क्षेपमण्डले। दर्शान्ते त्रिभोनलग्नस्य या दृग्ज्या स दृक्क्षेपः। द्वयोरपि तावान्। ब्रह्मगुप्तमते तु तच्चापांशा वित्रिभलग्नशरसंस्कृताश्चन्द्रदृक्क्षेपचापांशाः स्युः। तयोर्वृत्तयोः खार्धात् स्वस्वदृक्क्षेपचापांशैर्नतौ बिन्दु कार्यौ। तौ च वित्रिभसंज्ञौ। ततः प्रग्वद्भूम्याद् भूपृष्ठाच्च सूत्रे प्रसार्य लम्बलिप्तिका ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः। नतिर्नाम चन्द्रार्ककक्षयोर्याम्योत्तरनन्तरम्। तद्वित्रिभलग्नस्थाने यावत् सर्वतोऽपि तावदेव भवति। अतो दृक्क्षेपात् साधिता नतिः।

दृक्कुजसूत्रलक्षणम्-

यथैव खेटः परिदिग्भ्रमेण प्रयाति दृग्वृतमपीह तत्स्थम्।
भवेत् खमध्याच्च कुतद्युती ये तयोर्निबद्धं किल दृक्कुजसूत्रम्।।73।।

भाष्य- जिस प्रकार से ग्रह प्रवहवायु से भ्रमण करता है उसी प्रकार उस पर स्थित दृग्वृत्त भी खमध्य से भ्रमण करता है। उन दोनों क्षितिजवृत्त तथा दृग्वृत्त के संपातों से निबद्ध सूत्र दृक्कुजसूत्र संज्ञक होता है।

टिप्पणी – यह श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. का श्लोक- 248 ही है। यह दृक्कुजसूत्र, सूर्य सममण्डल में स्थित होने पर पूर्वापर सूत्र रूप होता है, याम्योत्तर में स्थित होने पर समसूत्र होता है, कोण में गत होने पर कोणसूत्र रूप होता है। यह उन वृत्तों के दृग्वृत्त होने से होते हैं। इसके लिए सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना के श्लोक- 249 में कहा है। यथा-

"तत्खेचरेन्द्रे सममण्डलस्थे भवेच्च पूर्वापरसूत्ररूपम्।
याम्योत्तरे कोणगते च तत्तत् भूसूत्ररूपं क्षितिजगर्भसूत्रम्।।249।।" इति।

दृग्वृत्तक्षितिजवृत्तसम्पातद्वयगतसूत्रं दृक्कुजसूत्रम् कथ्यते।

पलभापरिभाषा–

एवं विषुवती छाया स्वदेशे या दिनार्धजा।।$\frac{1}{2}$।।

दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा।।$\frac{1}{2}$।।

भाष्य– स्वदेश में विषुवद्दिन में मध्याह्न काल पर जो विषुवच्छाया (बारह अंगुल शंकु की छाया) दक्षिणोत्तर दिशा में होती है वह विषुवत्प्रभा अथवा पलभा नाम की होती है।

टिप्पणी– यहाँ कथित श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्ना. का श्लोक– 12–$\frac{1}{2}$ ही है। यह अधिक स्पष्ट है। अत: इसको यहाँ हमने कहा है। विषुवद्दिन से अतिरिक्तदिन में मध्याह्न में किसी प्रदेश पर जो छाया होती है। वह पलभा नहीं होती केवल शंकु की इष्टछाया नाम की होती है।

भास्कराचार्य ने विषुवद्दिन को स्पष्ट करके सि.शि. के स्पष्य. में कहा है। यथा–

"क्रियातुलाधरसंक्रमपूर्वतोऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्दिनम्।

मकरकर्कटसंक्रमतोऽयनं द्युदलभा विषुवद्दिवसे अक्षभा।।46।।" इति

यहाँ कहा है कि मेष तथा तुला राशि में संक्रमण करने पर अर्थात् उसके आरम्भ में विषुवद्दिन होता है। इसी प्रकार मकर तथा कर्क संक्रान्ति के पूर्व आयन दिन होता है। उस विषुवद्दिन में मध्याह्न काल में जो 12 अंगुल शंकु की छाया होती है वह उस स्थान की पलभा होती है। अयनांशों की कला को रविगति से विभक्त करने से फल अयन से दिन ज्ञात होते हैं। उतने दिनों के पूर्व मेष तुला संक्रान्ति होने पर विषुवद्दिन होता है। प्रकाशित पुस्तकों में जो श्लोक कहा है वह अधूरा है तथा उसमें चरखण्ड ज्ञात करने का भी सूत्र कहा है वह भी अधूरा है। यथा–

"मेषदिगे सायन सूर्यभागे दिनार्ध या भा पलभा भवेत्सा।

त्रिष्ठा हता: स्युर्दशभिर्भुजङ्गैर्दिग्भिश्चरार्धानि गुणोदधृतान्या।।"

मेषारम्भ में गत सायनसूर्य की जो दिनार्ध में शङ्कु छाया होती है वह पलभा होती है। पलभा को तीन स्थानों पर 10, 8, तथा $\frac{10}{3}$ से गुणा करने से स्वदेश के चरखण्ड प्राप्त होते हैं।

इस श्लोक में तुलारम्भ पर गत सूर्य के लिए नहीं कहा है तथा चरखण्ड प्राप्त होना नहीं कहा है। तथा श्लोक पलभा कथन के लिए उपुयक्त नहीं होने से हमने सर्वोपयुक्त श्लोक यहाँ दिया है।

संस्कृत– स्वाभीष्ट देश एवं विषुवती चलितविषुवद्दिनसम्बद्धा रेवत्यासन्नस्यापि उपचाराद्विषुवसंज्ञा तद्द्वयवर्त्तकमेवमिति। दिनार्धजा माध्याह्निकी या यन्मिका द्वादशांगुल–

शङ्कोश्छाया दक्षिणोत्तररेखायां निरक्षोत्तरदक्षिणदेशक्रमेण उत्तरस्यां दक्षिणस्यां प्रभाया: दक्षिणोत्तर रेखास्थत्वं बिना मध्याह्नासम्भवात् सा तन्मिता तत्र तस्मिन् अभीष्ट देशे विषुवत्प्रभाक्षभा भवति।

अयनांशानां कला रविभुक्तया हृता: फलमयनलवोत्थदिनानि। तैर्दिनैर्मेषसंक्रान्ते-स्तुलासंक्रान्तेश्च प्राग्विषुवद्दिनं भवति। एवं मकरकर्कटसंक्रमत: प्रागयनदिनम्। तस्मिन् विषुवद्दिने मध्याह्ने या छाया सा पलभा।

शङ्कुस्थानम्–

दृष्टिमण्डलभवा लवा: कुजादुन्नता गगनमध्यतो नता:।
शङ्कुरुन्नतलवज्यका भवेद्दृग्गुणश्च नतभागशिञ्जिनी।।74।।
भास्करेऽत्र सममण्डलोपगे यो नरः स समशङ्कुरुच्यते।
कोणशङ्कुरथ कोणवृत्तगे मध्यशङ्कुरिति दक्षिणोत्तरे।।75।।

भाष्य– दृग्मण्डल में क्षितिज के ऊपर ग्रहपर्यन्त जितने अंश होते हैं वे उन्नतांश होते हैं तथा खमध्य से अध: होते हैं वे नतांश होते हैं। उन्नतांश की ज्या शंकु होती है तथा नतांश की ज्या दृग्ज्या होती है। रवि के सममण्डल में स्थित होने से जो शंकु होता है उसको समशङ्कु कहते हें तथा जब वह कोणवृत्त में होता है तब उसका शङ्कु कोणशङ्कु नाम का होता है। दक्षिणोत्तर में स्थित होने पर सूर्य का शंकु मध्याह्नशङ्कु होता है।

टिप्पणी– ये श्लोक सि.शि. के त्रिप्रश्नवासनाध्याय के श्लोक–36–37 ही हैं। इसका अर्थ है कि सूर्य जिस भी मण्डल में स्थित होता है तब उसके उन्नतांशों की ज्या उसके उसी नाम के मण्डल का शङ्कु होता है।

संस्कृत– दृङ्मण्डले क्षितिजादुपरि ग्रहपर्यन्तं येऽशास्ते उन्नता:। खमध्यादधस्ते नता:। उन्नतांशां ज्या शङ्कु:। नतांशाज़्या दृग्ज्या। सममण्डस्थे रवौ समशङ्कु:, कोणवृत्ते कोणशङ्कु:। याम्योत्तरे स्थितरवे: क्षितिजोपरि लम्बो मध्यशङ्कु भवेत्।

दिगंशाग्राऽक्षांशक्रान्त्यंशा: परिभाषा–

चक्रांशकाङ्के क्षितिजाख्यवृत्ते प्राक्स्वस्तिकात् दृग्भवमण्डलान्त:।
दिगंशका: स्वीयभुजाख्यदिक्कास्तथा द्युरात्रावधिकाग्रकांशा:।।76।।
भमण्डलस्थग्रहगोलदिक्काश्चैवं हि याम्योत्तरमण्डलेऽपि।
अक्षांशकास्ते तु सदैव याम्याखमध्यदेशाद्विषुवं तु यावत्।।77।।
तथापमांशा ग्रहगोलदिक्का नाड्याह्वयात्स्वद्युनिशाख्यवृत्तम्।
एवं खमध्यान्नतभागका: स्युर्द्युरात्रवृत्तावधिका अतोऽत्र।।78।।

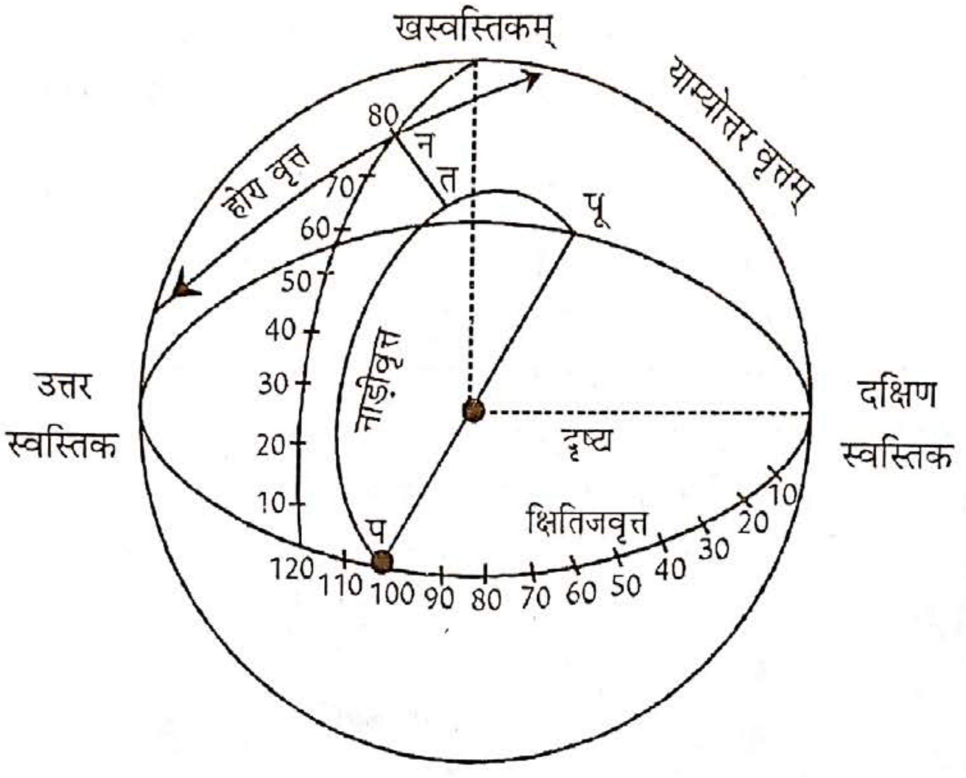
भाष्य– 360 अंश से अंकित क्षितिजवृत्त में पूर्वस्वस्तिक से दृग्मण्डल में दिगंश, स्वभुजा की दिशा में अहोरात्रवृत्त अग्र तक अंश होते हैं।

क्रान्तिवृत्तस्थ ग्रह के गोल (उत्तर-दक्षिण) की दिशा में ही याम्योत्तरवृत्त में भी अक्षांश सदैव दक्षिण दिशा में स्व खमध्य से विषुवद्वृत्त तक होते हैं।

इसी प्रकार ग्रहगोल की दिशा में घट्यादि अवयवों के अहोरात्रवृत्त से नाड़ीवृत्त तक क्रान्त्यंश होते हैं। इसी प्रकार खमध्य से नतांश अहोरात्रवृत्त में होते हैं।

टिप्पणी- ये श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक- 186 से 188 ही हैं।

संस्कृत- प्रधानं महद्वृत्तं क्षितिजमस्ति। गौणानि महद्वृत्तानि नैकानि खस्वस्तिकप्रोतोर्ध्वाधरवृत्तानि। प्रमुखगौणमहद् वृत्तं प्रायेण दक्षिणसमस्थानप्रोतोर्ध्वाधर वृत्तं अर्थात् पूर्वापरवृत्तं प्रमुखगौणमहद्वृत्तमस्ति।



क्षितिजमनु मापितं दक्षिणसमस्थानाद् नक्षत्र विशेषस्य कोणीयान्तरं दिगंशाः। क्षितिजस्य दृङ्मण्डल-याम्यसमस्थानमध्यवर्तिनो वृत्तांशा **दिगंशाः।**

दृङ्मण्डलमनु मापितं क्षितिजाद् नक्षत्रस्य ऊर्ध्वत्वं निम्नत्वं कोणीयप्रमापके उन्नतांशाः। अर्थात् दृङ्मण्डलस्य नक्षत्रक्षितिजदृङ्मण्डलसंपातमध्यवर्तिनो वृत्तांशाः **अन्नतांशाः।** अतः दिगंशाः 120, उन्तांशाः 80 तथा नतांशाः = ख न । **क्रान्त्यंशाः।** होरावृत्तमनु नाडीवृत्ताद्नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं क्रान्त्यंशाः कथ्यन्ते। अर्थात् होरावृत्तस्य नक्षत्र होरावृत्तनाडीवृत्तसम्पात मध्यवर्तिनो वृत्तांशाः क्रान्त्यंशाः अत्र क्रान्त्यंशाः = न त।

पूर्वापरवृत्तात् यद्दिक् क्षितिजे दृग्वृत्तं लगति तद्दिक्का दिगंशा ज्ञेयाः। तत्र याम्यगोले दृग्वृत्तस्य समवृत्तात्सदैव दक्षिणगतत्वात् दिगंशा याम्या एव। सौम्ये सममण्डलप्रवेश-बिन्दुतोऽधोयावत् सौम्याः। तदूर्ध्व तु याम्या एवेति स्पष्टम्। परन्तु खस्वस्तिकात्पूर्वभागे समवृत्तात् यद्दिशि दृग्वृत्तम्, परभागे तद्विरुद्धदिग्गत्वात्तस्य कपालभेदात् दिगंशदिग् एकस्मिन् दृग्वृत्ते विपरीता भवति।

श्लोक रूपेषु–

प्राक्स्वस्तिकात् यद्दिशि चैर्लवैः स्यात्तद्दिग्भवाः खेटदिंगशकास्ते।
याम्योत्तरा वा सममण्डलाद् ये दिगंशकास्ते किलयाम्यसौम्याः।।
ये याम्यगोले तु सदैव याम्योः सौम्ये तु याम्योत्तरगाः कुजोर्ध्वम्।
यद्दिग्भवाः खेटकपालसंस्थाः दिगंशकास्तत्खचरापरस्थे।।
कपालके तत्समदिग्लवाः स्युस्तदन्यदिक्स्था नियतं स्वगोले।

दृग्वृत्तक्षितिजयोः सम्पातात् पूर्वापसूत्रे लम्बो दिग्ज्या, तस्यापश्वापं दिगंशाः।

अग्राक्रान्तिज्याकुज्याचरज्या परिभाषा–

पूर्वापरोदयास्ताख्यसूत्रयोरन्तरं भवेत्।
सर्वत्रैवाग्रकातुल्यं व्यासाख्यप्राक्परान्तरे।।79।।
तथा क्रान्तिज्यका व्यासोदयास्तविवरं तथा।
कुज्यातुल्यं द्युजीवाख्ये त्रिज्याख्ये सा चरज्यका।।80।।

भाष्य– पूर्वापर तथा उदयास्तसूत्रों का अन्तर सर्वत्र ही अग्रातुल्य होता है। पूर्वापर तथा निरक्षोदयास्त सूत्रों के मध्य में क्रान्तिज्या होती है। अहोरात्रवृत्तव्यास तथा उदयास्त सूत्र का अन्तर कुज्या (क्षितिज्या) तुल्य होता है। जो द्युजीवा नाम की तथा त्रिज्या नाम की होती हैं उनका अन्तर चरज्या होती है।

टिप्पणी– ये श्लोक सि. त. वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक– 246–247 ही हैं।

संस्कृत– व्यासाख्यप्राक्परयोर्निरक्षोरुदयास्तसूत्र पूर्वापरसूत्रयोरन्तरे मध्ये क्रान्तिज्याका। अत्र व्यास पदेनाहोरात्रवृत्तव्यासस्य ग्रहणम्। पूर्वापरसूत्रं उदयास्त सूत्रं च अन्तरम् सर्वत्रैव अग्रा तुल्यं भवेत्। तथा व्यासोदयास्तयोः विवरं कुज्यातुल्यं स्यात्। द्युजीवाख्ये त्रिज्याख्योः अन्तरम् चरज्या का भवेत्।

हृति–अन्त्ययोः परिभाषा–

क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा हृतिश्चरज्ययैवं त्रिगुणोऽपि सान्त्यका।
रवावुदग्दखिणगोलयाते सूत्रं युतोनं चरजीवया स्यात्।।81।।
इष्टान्त्यकैवं क्षितिजीवया च कला युतोना हृतिरिष्टकाले।।

भाष्य– इसी प्रकार द्युज्या को उत्तरगोल में क्षितिज्या में युत करने से तथा दक्षिणगोल में घटाने से हृति होती है। इसी प्रकार त्रिज्या और चरज्या को युक्त–हीन करने से अन्त्या होती हैं। सूर्य के उत्तर–दक्षिणगोल में होने पर सूत्रसंज्ञक को चरज्या में क्रमशः युत–हीन करने से इष्टान्त्या होती है तथा क्षितिज्या एवं कलासंज्ञक को इसी प्रकार गोल क्रम से युत–हीन करने से इष्टहृति होती है।

टिप्पणी– यहाँ कथित सूत्र सिद्धान्तशिरोमणि के त्रिप्रश्ना. के श्लोक– 34–56–$\frac{1}{2}$ हैं। याम्योत्तरवृत्त अहोरात्रवृत्त के सम्पात से बद्ध भूस्थ सूत्र हृति होता है तथा दृग्वृत्त

अहोरात्रवृत्त संपात से बद्ध सूत्र इष्टहृति नाम का होता है। इष्ट अंत्या=सूत्र ± ज्याचर तथा इष्टहृति = कला ± कुज्या और इष्ट शंकु = इष्ट यष्टि ± उन्मण्डल शंकु। यहाँ उत्तर गोल में धन चिह्न तथा दक्षिण गोल में ऋण चिह्न होता है।

संस्कृत- द्युज्यैवं क्षितिज्ययोत्तरगोले युता याम्ये रहिता हृतिर्भवति। एवं त्रिज्या चरजीवया युतोनान्त्या स्यात्। पूर्वानीतं सूत्रं तदुत्तरगोले चरज्यया युक्तं दक्षिणे हीनमिष्टान्त्यकासंज्ञं भवति। एवमनेनैव गोलक्रमेण कुज्यया युतहीना सती कलेष्टहृतिसंज्ञा भवति। याम्योत्तर-वृत्ताहरोरात्रवृत्तसंपातबद्धं सूत्रं हृत्याख्यम्। दृग्वृत्ताहोरात्रवृत्तसंपातबद्धमिष्टहृत्याख्यम्। तथैव च सिद्धान्ततत्त्वविवेके त्रिप्रश्नाधिकारे कथित। यथा-

"(इष्टयष्टि)रथार्कस्य चरज्या गोलदिक्कमात्।
सूत्रे युतोनिता सेष्टान्त्यकैवं क्षितिजीवया।।311।।
युतोनिता कला सेष्टहृतिरेवं स्वयष्टिका।
इष्ट्येद्वृत्तनरेणात्र युतोनेष्टनरो भवेत्।।312।।" इति

क्षितिजाहोरात्रवृत्तसंपातनिष्टध्रुवप्रोतस्य क्षितिजस्य चान्तराले नाडीवृत्ते चरम्। तत्र सौम्यगोले चरोन्नतकालयोरन्तरे कृत, याम्ये तयोर्योगे कृते सति बिम्बगतध्रुवप्रोतवृत्तात्पूर्व-स्वस्तिकावधि नाडीवृत्ते चापमानम्, तज्ज्या तु सूत्रसंज्ञं वेदितव्यम्।

अथ क्षितिजाहोरात्रवृत्तसंपातगतध्रुवप्रोतवृत्तयोर्बद्धसूत्रं चराग्रबद्धसूत्रसंज्ञम्। तेन सह पूर्वापरसूत्रस्य, सर्वत्र चरज्यातुल्यानतम्। तेन विम्बीयध्रुवप्रोत्तवृत्तनाडीवृत्तसंपातात् चराग्रबद्धसूत्रे यो लम्बः सा इष्यन्त्या। तत्र पूर्वपृष्ठेक्त वतेव इष्ट अंत्या, इष्टहृति तथा इष्ट शंकुः, गोलक्रमात्।

चरस्वरूपं दिनरात्रिमाने च परिभाषा-

सदा सौम्यगोले निरक्षीयभूजात् स्वभूजं त्वधश्चोर्ध्वगं याम्यगोले।
तयोरन्तरं कालवृत्ते चरं स्यात् अतोंऽशात्मकं यच्च तत्षड्विभक्तम्।।82।।
भवेन्नाडिकाद्यं च तद्युक्तहीनाः क्रमात् गोलयोरत्र पञ्चेन्दुनाड्यः।
दिनार्धं भेवत् खाग्निशुद्धं निशार्धं द्विनिघ्ने कृते ते द्युरात्र्युन्मिती स्तः।।83।।

भाष्य- उत्तर गोल में सदा निरक्षीय क्षितिज से स्वदेशीय क्षितिज नीचे होता है तथा दक्षिणगोल में ऊपर होता है। इनका अन्तर नाड़ीवृत्त में चरसंज्ञक अंश होते हैं। इन अंशों को छः से विभक्त करने से घटियाँ प्राप्त होती हैं। इनको गोलक्रम से 15 घटी में युत-हीन करने से दिनार्ध का मान (घट्यादि) प्राप्त होता है तथा दिनार्ध को 30 घटी में से घटाने से रात्र्यर्ध का मान प्राप्त होता है। इन प्राप्त घटियों को दुगुना करने से दिन-रात्रि के मान प्राप्त होते है।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.शि. के सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-147-148 है।

संस्कृत- उन्मण्डलयाम्योत्तरवलनययोर्मध्ये पञ्चदश घटिकाः। उन्मण्डलादधः क्षितिजमुत्तरगोले चरार्धकालेनास्तदधिकाः पञ्चदश घटिकाः। याम्यगोले तु तदूर्ध्वमतश्चरेनास्तत्र पञ्चदश। पञ्चदशनाड्य उत्तरगोले चरघटिभिः सहिता दक्षिणे रहिताः। एवं कृते निजसावनं

द्युदलप्रमाणं भवति। दिनदलं त्रिंशतो विशुद्धं रात्रिदलं भवति। क्षिजिजोन्मण्डलयोः मध्येऽहोरात्रवृत्ते कुज्याचापांशा। ते च त्रिज्यावृत्ते परिणताः चरचापांशाः। अर्थादहोरात्रवृत्तक्षितिजवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाडीवृत्ते यत्र लग्नं तस्मात् पूर्वस्वस्तिकावधिर्नाडीवृत्ते चरचापांशाः।

सौम्ययाम्यगोलक्रमेण दिनमान व्यवस्था-

अथार्धान्यहोरात्रवृत्तानि चोन्मडलोर्ध्वं तथाऽधोऽनिशं संस्थितानि।
खषट्नाडिकाास्तद्वृत्तौ खाग्निनाड्यस्तदर्धेऽब्धिभागे तु पञ्चेन्दुनाड्यः।।84।।
द्युरात्रिवृत्तं क्षितिजोर्ध्वगं यत् दिनस्य रात्रेर्यदधः स्थितं स्यात्।
तत्सौम्यगोलेऽधिकमल्पकं स्यात् याम्येऽधिकाल्पं दिनमानमस्मात्।।85।।
अल्पाधिकं तत्र निशाप्रमाणं क्रमात् निरक्षे त्वधरोर्ध्वसाम्यात्।
सदैव साम्यं द्युनिशोश्च सौम्ययाम्यध्रुवाधः स्थितयोरपीत्थम्।।86।।
तत्सावनं चार्कवशात् स्थिरर्क्षवशात् भवेदार्क्षमिति प्रभेदः।

भाष्य- ग्रह अहोरात्र का अर्ध भाग तथा उन्मण्डल का अर्धभाग ऊपर तथा नीचे सदा स्थित होते हैं। उस अहोरात्र वृत्त में 60 घटियाँ होती हैं, उसके अर्ध में 30 घटी होती हैं तथा चतुर्थ भाग में 15 घटी होती हैं। अहोरात्रवृत्त का क्षितिज के ऊपर स्थित दिन का भाग तथा नीचे का अर्ध भाग रात्रि काल का होता है। उत्तर गोल में दिनमान अधिक तथा अल्प होता है तथा दक्षिण गोल में अधिक तथा अल्प होने पर क्रमशः वहाँ अल्प तथा अधिक रात्रि प्रमाण होता है। निरक्ष स्थान पर नीचे-ऊपर की समानता होने से सदा अहोरात्र समान ही होते हैं, उत्तर से दक्षिण ध्रुव नीचे स्थित होने पर भी। ये अहोरात्र (दिवस-रात्रि) मान सूर्य से सावनमान के होते है तथा स्थिर नक्षत्रों से नाक्षत्रमान के होते हैं।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त.वि. के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-146-149-150-$\frac{1}{2}$ ही है।

संस्कृत- अहोरात्रवृत्तस्य यतर्धभागः (उन्मण्डल) क्षितिजोर्ध्वगं तत् दिनस्यभागः तत् मानम् त्रिंषत् घटिका तथा (उन्मण्डल) क्षितिजाधः स्थितं तत्खण्डं यत् तत् रात्रेर्मानमपि त्रिंषत्घटिका तुल्यम् अस्ति। उन्मण्डलयोत्तरवलयोर्मध्ये पञ्चदश घटिकाः। उन्मण्डलादधः क्षितिजामुत्तरगोले च्चरार्धकालेनातस्तदधिकाः पञ्चदश घटिकाः। याम्यगोले तु तदूर्ध्वमतश्चरोनास्तत्र पञ्चदश। सकल अहोरात्र मानम् षष्टिघटिका तुल्यम् भवेत्। नाक्षत्रदिनस्य समयगणको मेषसंपातः, नाक्षत्रदिनञ्च मेष सम्पातानुक्रमिकोल्लङ्घनद्वयमध्यवर्तिकालावधि। परन्तु इदमहो मध्यमसौराह्नात् किञ्चिदल्पमर्थाद् यद्यद्य मेषसंपातो याम्योत्तरवृत्तं मध्यमसौरमध्याह्ने उल्लङ्घयति तर्हि श्वः स याम्योत्तरवृत्तं मध्यमसौरमध्याह्नात् किञ्चित् पूर्वमुल्लङ्घयिष्यति। इदञ्च वेधेन निर्णीयते। भिन्नतेयं भुवः सूर्यपरितः परिभ्रमणादेव। मध्यमसौर (सावन) दिनं मध्यमसूर्यानुक्रमिकोल्लङ्घनद्वयमध्यवर्ति कालावधि। इदं षष्टि घटिकात्मकम् 24 होरात्मकम् च।

रवेः उदयादुदयं सावनं दिनम् चार्क्षं स्थिरर्क्षस्य उदयादुदयं भवेद्दिनम् नाक्षत्रम्।

व्यतिपातपरिभाषा-

व्यतिपातोऽयनभेदे गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः।
साम्ये वैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रमसमत्वे।।87।।

भाष्य- सूर्य तथा चन्द्रमा यदि एक ही गोल, उत्तर या दक्षिण, में हो लेकिन उनके अयन स्थिति में अन्तर हो अर्थात् भिन्न अयन भागों में स्थित हो तथा उनकी क्रान्ति की साम्यता हो तो व्यतिपात नाम का पात होता है। तथा यदि वे एक ही अयन भाग में स्थित हो लेकिन भिन्न गोल में स्थित हो तथा उनका क्रान्ति साम्य हो तब वैधृति नाम का योग होता है।

टिप्पणी- यहाँ कथित यह श्लोक सिद्धान्तशिरोमणि के पाताधिकार का श्लोक-8 ही है। प्रकाशित अन्य पुस्तकों में जो श्लोक कहा है वह व्यर्थ है। यथा-

"नाडीक्रान्तिवृत्तोत्थयोगौ तु यौ।
गोलसन्धी तथा क्रान्तिपातौ स्मृतौ।।" इति

इस श्लोक का अर्थ है कि जिस प्रकार से नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त के योग स्थान गोलसन्धी होते हैं उसी प्रकार क्रान्तिपात होते हैं। यह व्यर्थ हैं तथा इसका कोई अर्थ नहीं है। सिद्धान्तज्योतिष में जो दो पात प्रसिद्ध हैं वे वैधृति तथा व्यतिपात होते हैं, इनको जानना आवश्यक है।

ग्रहों की कक्षायें जिन स्थानों पर क्रान्तिवृत्त से संपात करती हैं वे स्थान उन ग्रहों के पात स्थान कहलाते है। यह बात साधारण है तथा उक्त श्लोक में स्पष्ट रूप में नहीं कही है।

यदि सायनसूर्य-चन्द्रमा का योग छः राशि हो अथवा बारह राशि हो तो क्रमशः व्यतिपात तथा वैधृति व्यतिपात होने की संभावना होती है।

संस्कृत- क्रान्तिसाम्यस्य लक्षणविशेषेण व्यतिपातवैधृतनामयोगौ भवत। इदं हि किल लक्षणम्। यदार्कचन्द्रौ भिन्नायनसंस्थावेकगोलौ च भवतस्तदा यदि तयोः क्रान्तिसाम्यं भवति तदा व्यतिपातनामा योग उच्यते। यदैकायनयोर्भिन्नगोलस्थयोश्च क्रान्तिसाम्यं भवति तदा वैधृतनामा याग उच्यते।

कस्मिश्चिद्दिने स्फुटौ रविचन्द्रौ पातश्च कार्यः। तयो रविचन्द्रयोः पृथक्-पृथक् सायनांशयोर्योगो यदा भार्ध भवति तदा तस्य कालस्यासन्नोऽग्रतः पृष्ठतो वा व्यतिपातस्य संभवोऽस्तीति ज्ञेयम्। यदा तु तयोर्योगश्चक्रं 12 भवति तदासन्नो वैधृतस्य संभवो ज्ञेयः।

अक्षक्षेत्राणि परिभाषा-

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां विद्येव मानार्थयशः सुखानाम्।।88।।
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभज्या।
कुज्या भुजः कोटिरपक्रमज्या कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम्।।89।।

तथैव कोटिः समवृत्तशङ्कुरग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुजोनिता तद्धृतिरत्र कोटिः।।90।।
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरुद्धृत्तना दोः श्रवणोऽपमज्या।
उद्धृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या।।91।।
खण्डं तदूर्ध्वं समवृत्तशङ्कोर्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णौ।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत्।।92।।

भाष्य- पलभा भुज, द्वादशाङ्गुल शङ्कु कोटि तथा अक्षकर्ण कर्ण है। यह अक्षक्षेत्र (समकोण त्रिभुज) अग्र कथित अक्षक्षेत्रों का मूल क्षेत्र है। अन्य द्वितीय क्षेत्र की लम्बज्या कोटि, अक्षज्या भुज, तथा त्रिज्या कर्ण है। तीसरे क्षेत्र की कुज्या भुज, क्रान्तिज्या कोटि तथा अग्रा कर्ण है। चतुर्थ क्षेत्र की समवृत्तशंकु कोटि, अग्रा भुज तथा तद्धृति कर्ण है। पंचम क्षेत्र का उन्मण्डल में क्रान्तिज्या भुज, समशंकु कर्ण, तथा तद्धृति में से कुज्या घटाकर कोटि है। षष्ठं क्षेत्र में अग्रादिखण्ड कोटि, उन्मण्डलशङ्कु भुज, क्रान्तिज्या कर्ण है। सप्तम क्षेत्र में उन्मण्डलशङ्कु कोटि, अग्रा का अग्रखण्ड भुज तथा क्षितिज्या कर्ण है। अष्टम् क्षेत्र में समशङ्कु ऊर्ध्वखण्ड कोटि, तद्धृति ऊर्ध्वखण्ड कर्ण तथा अग्रादिखण्ड भुज है। इस प्रकार ये आठ अक्षक्षेत्र हैं।

टिप्पणी- ये सभी समकोण त्रिभुज है तथा इनमें एक कोण अक्षांश तुल्य होता है। इनकी यहाँ तीनों भुजायें कही गई है। इनकी विस्तार से व्याख्या के लिए मेरे द्वारा कृत सि.शि. के त्रिप्रश्ना के श्लोक-13 से 17 की व्याख्या का अवलोकन करें। वे ही श्लोक यहाँ कहे गये हैं। विषुवन्मण्डल लम्बवत् स्थित होने से उस पर आश्रित अहोरात्रवृत्त स्वस्थान पर तिरछे होते हैं। अतः साक्ष देशों में खगोल मण्डलों के साथ तिरछे भगोल मण्डलों के सम्पात से त्रिभुज क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। वे क्षेत्र उपयोगी होने से उनकी अक्षक्षेत्रसंज्ञा कही है। ऐसे बहुत से क्षेत्र होते हैं।

संस्कृत- अत्र किल निरक्षदेशे यदेव विषुवन्मण्डलं तदेव सममण्डलम्। तथा क्षितिजादन्यदुन्मडलं नाम वलयं नास्ति। तत्र ध्रुवौ च क्षितिजसक्तौ। अथ निरक्षदेशाद्द्रष्टा यथा यथोत्तरतो गच्छति तथा तथोदग्ध्रुवमुन्नतं पश्यति। तथा यैर्भागैर्ध्रुव उन्नतस्तैरेव भागैरक्षसंज्ञैः खस्वस्तिकाद्दक्षिणातो विषुवन्मण्डलं नतं पश्यति। विषुवन्मण्डलस्य तिर्यक्स्थितत्वात् तदाश्रितान्यहोरात्रवृत्तानि स्वस्थाने तिरचीनानि भवन्ति। अतः साक्षे देशे खगोलवलयानां तिरश्चीनभगोलवलयानां च संपातात् त्र्यस्त्राणि क्षेत्राण्युत्पद्यन्ते। तान्यक्षक्षेत्रसंज्ञान्युपयोगित्वात् कथ्यन्ते।

प्रथम अक्षक्षेत्रम्- अक्षभा नाम पलभा प्रसिद्धा सा भुजः। द्वादशाङ्गुल शङ्कुः कोटिः। अक्षकर्णस्तत्र कर्णः। इदं तेषामक्षक्षेत्राणां वक्ष्यमाणानां मूलम्।

द्वितीय अक्षक्षेत्रम्- दक्षिणोत्तरमण्डले विषुवद्वृत्तसंपातादधो यावल्लम्बः क्षितिजसमसूत्रपर्यन्तः सा तत्र कोटिः। लम्बनिपातकुमध्ययोरन्तरं साक्षज्या तत्र भुजः। भूमध्याल्लम्बाग्रगामि सूत्रं त्रिज्या सा तत्र कर्णः।

तृतीय अक्षक्षेत्रम्- इष्टाहोरात्रवृत्तं यत्र क्षितिजे लग्नं तस्य प्राक्स्वस्तिकस्य चान्तरमग्राचापांशा:। तेषां ज्याग्रा। तावती च प्रात्यक्‌क्षितिजे। अग्राग्रयोर्निबद्धं सूत्रमुदयास्तसूत्रम्। अहोरात्रवृत्तोन्मण्डलसंपातस्य प्राच्यपरसूत्रस्य च पदन्तरं सा क्रान्तिज्या। सा तत्र कोटि:। अग्रा कर्ण:। तदग्रयोरन्तरं सा कुज्या। स भुज:।

चतुर्थ अक्षक्षेत्रम्- अहोरात्र वृत्त सममण्डलसंपातादधोऽवलम्ब: समवृत्तशङ्कु:। सा कोटि:। अग्रा भुज:। अहोरात्रवृत्ते ज्याखण्डं तद्धृति: कर्ण:।

पञ्चम अक्षक्षेत्रम्- कुज्योनिता तद्धृतिरहोरात्रवृत्ते ज्यार्धं सा कोटि:। उन्मण्डले क्रान्तिज्या स भुज:। समवृत्तशङ्कु: कर्ण:।

षष्ठम् अक्षक्षेत्रम्- अहोरात्रोन्मण्डलयो: संपातादवलम्ब उन्मण्डलशङ्कु स भुज:।

सप्तम् अक्षक्षेत्रम्- तथोन्मण्डलशङ्कु कोटि: शङ्कुमूलोदयास्त सूत्रयोरन्तरमग्राखण्डं स भुज:। कोटिभुजाग्रयोरन्तर सूत्रं सा कुज्या। स तत्र कर्ण:।

अष्टम् अक्षक्षेत्रम्- तथोन्मण्डलशङ्कुना हीना समशङ्कुस्तत् समशङ्कोरूर्ध्व खण्डं सा कोटि:। कुज्योना तद्धृतिस्तद्धृतेरूर्ध्वखण्डं स कर्ण:। अग्रादिखण्डं स भुज:।

एतान्यष्टौ तावत् कथितानि। एवमन्यान्यपि भवन्ति।

लङ्कोदयासुज्ञानम्-

त्रिभद्युकर्णार्धगुणा: स्वाहोरात्रार्धभाजिता:।।
क्रमादेकद्वित्रिज्यास्तच्चापानि पृथक्-पृथक्।
स्वाधोध: परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासव:।।93।।

भाष्य- तीन राशि की द्युज्या को तीनों राशियों की ज्या से क्रमश: गुणा करके तीनों राशियां की स्वस्वद्युज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल के पृथक्-पृथक् चापों को क्रमश: अधोऽध घटाने से मेषादि तीनों राशियों के लङ्कोदय मान प्राप्त होते है।

टिप्पणी- यहाँ कथित श्लोक सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्ना. के श्लोक-42-43 ही हैं। सूत्ररूप में-

$$\text{नाडीवृत्त में मेषोदयासुज्या} = \frac{\text{तीन राशि की द्युज्या} \times \text{ज्या 1 राशि}}{\text{मेषान्तद्युज्या}}$$

$$\text{नाडीवृत्त मेषवृषभोदयासुज्या} = \frac{\text{तीन राशि की द्युज्या} \times \text{ज्या 2 राशि}}{\text{वृषभान्तद्युज्या}}$$

$$\text{नाडीवृत्त में मेषवृषभमिथुनोदयासुज्या} = \frac{\text{तीन राशि की द्युज्या} \times \text{ज्या 3 राशि}}{\text{मिथुनान्तद्युज्या}}$$

इनके चाप बनाने से इनके निरक्ष में उदयासु हाते हैं। द्वितीय में से प्रथम को घटाने से वृषभोदयासु प्राप्त होते हैं तथा तृतीय में से द्वितीय को घटाने से मिथुनोदयासु प्राप्त होते हैं और प्रथम से सीधे ही मेषोदयासु प्राप्त होते हैं।

मेषादि राशियों के क्रान्तिवृत्त में स्थित जो विभाग हैं वे जितने अस्वात्मक काल में लङ्काक्षितिज में उदित होते हैं उनको उन राशियों के निरक्षोदयासु अथवा लङ्कोदयासु कहते हैं

स्थिर मेषादि से ग्रह सम्बन्धि ध्रुवसूत्र उत्तर या दक्षिण गोल, से जो विषुवद्वृत्त में क्षेत्रांश होते हैं वे उनके विषुवांश होते हैं। निरक्षस्थान (विषुववृत्त) में इन क्षेत्रांशों के उदय होने में जितना समय लगता है वह उनके उदयासु होते है।

संस्कृत- मेषादिराशिसंज्ञकाः क्रान्तिवृत्तस्य विभागा यावताऽस्वात्मकेन कालेन लङ्काक्षितिजे समुद्गच्छन्ति ते तेषां राशीनां निरक्षोरयासवः लङ्कोदयासवो वा कथ्यते। स्थिरमेषादितः खेटसम्बन्धिध्रुवसूत्रगाः क्षेत्रांशास्तत्र विज्ञेया विषुवे विषुवांशकाः। निरक्षे स्थिरमेषादितो राशिनां क्षेत्रांशेभ्यस्तदुदय कालांशाः, उदयासव स्यात्।

''उन्मण्डले मेषमुखोदयाद्यत् क्षेत्रांशका यान्त्युदयं च येन।
कालेन ते व्यक्षसमुद्गमांशाः कालाश्च तत्रासव एव बोध्याः।।
भमण्डले ऽजादिगृहत्रयस्य क्षेत्रांशका ये प्रतिभागजाताः।
तेषां यथोक्त्या विषुवंशका ये ते चोदयांशाः स्वनिरक्षदेशे।।'' इति

खकक्षाप्रमाणम्-

तावद्ब्रह्माण्डगोलोऽयं स्वर्णाभोऽन्तस्तमोवृतः।
वेदर्त्त्वष्टाभ्रनागाभ्रदस्रेन्द्वद्रयष्टभूमयः ।।94।।
प्रयुतघ्ना वरीवर्ति यस्य कक्षा खकक्षिका।
यस्यान्तः सर्वदा रश्मिप्रसारोऽस्ति खेर्ध्रुवम्।।95।।

भाष्य- स्वर्णमय आभावाला यह ब्रह्माण्डगोल 18712080864000000 योजन मान का है। इसके अन्दर चारों ओर की कक्षा खकक्षा है। इस गोल के अन्दर की ओर अन्धकार हैं जिसमें सर्वदा सूर्य की रश्मियाँ (फैली) पसरी हुई रहती हैं

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त.वि. के मध्यमा. के श्लोक-56-57 ही हैं। यही मान सू.सि. के भूगो. के श्लोक-90 में कह है। खकक्षा अथवा आकाश कक्षा को ही ब्रह्माण्डगोल भी कहते हैं। इसके अन्दर सर्वत्र अंधेरा रहता है लेकिन इतनी दूरी में ही सूर्य की रश्मियों का प्रकाश इस ब्रह्माण्ड गोल के अन्दर रहता है। अतः उतने भाग को ही खकक्षा कहा जाता है। यहाँ कथित मान से भिन्न मान भास्कराचार्य ने सि.शि. में 18712069200000000 योजन कहा है।

संस्कृत- आकाशकक्षाज्ञानासम्भवापत्तेरित्यत आकाशकक्षैवागमप्रमाण्येनाङ्गी-कार्य्येति। ब्रह्माण्डसम्पुटपरिभ्रमणं ब्रह्माण्डगोलस्य परिधिः। अभ्यन्तरे ब्रह्माण्डगोलान्तः सूर्यस्याभितः किरणानां प्रसारः सूर्यकिरणप्रचार देशस्य परिधिस्तत्तुल्यः। एतेन ब्रह्माण्डगोलान्तः परिधिर्न बाह्य इति सूचितम्। अत्रत्यखकक्षामानं भास्करोक्तखकक्षातो भिन्नमस्ति।

साधारणक्षितिजम्-

अवनौ गगनं समन्ततः सततं लग्नमिवावलोक्यते।
क्षितिपृष्ठनिवासिमानुषक्षितिजं तद्गुरवो वदन्त्यतः।।96।।

भाष्य- भूमि जहाँ पर आकाश को सब ओर से लगते हुए दिखाई देती है वही भूमि पर स्थित मनुष्य का क्षितिज होता है। ऐसा पूज्यों ने कहा है।

टिप्पणी- यह श्लोक सि.त.वि. के मध्यमा. का श्लोक-195 ही है। यहाँ भूमि पर स्थित मनुष्य के साधारण क्षितिज की सरल भाषा में परिभाषा बताई गई है।

संस्कृत- अवनौ भूमौ यतो गगनमाकाशः समन्ततः परितः लग्नमिव संपुटमिव दृश्यते तदेव भूस्थजनक्षितिजम्, गुरवः पूज्या वदन्ति।

परनीचपरोच्चगोलकथनम्-

उच्चनीचाभिधौ कर्णौ बिम्बार्धेन युतोनितौ।
परोच्चपरनीचाख्यौ ज्ञेयौ गोविदाऽत्र तौ।।97।।
परोच्चमान्दश्रवणान्तरेण कुगर्भतः स्यात्परञोच्चगोलः।
तथैव मान्दात् परनीचकर्णात् व्यासार्धतः स्यात् परनीचगोलः।।98।।

भाष्य- भूकेन्द्र से परमदूरी पर ग्रह जब होता है तब वह उच्चस्थान पर स्थित होता है। उस उच्चकर्ण में बिम्ब व्यासार्ध को युक्त करने से प्राप्त व्यासार्ध से कृत गोल के नीचे ही ग्रहबिम्ब सदा भ्रमण करता है। यह उसका परोच्चगोल होता है। इसी प्रकार भूकेन्द्र से (परम) अतिआसन्न जब ग्रह होता है तब ग्रह नीचस्थान पर होता है वहाँ पर भूकेन्द्र से अन्तर तथा ग्रह की पाली के अन्तर तुल्य व्यासार्ध से कृत गोल से आगे (ऊर्ध्व) ही सदा ग्रह रहता है तथा यह परनीचगोल होता है।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त.वि. के स्पष्य. के श्लोक- 324-325 ही हैं।

संस्कृत- भूकेन्द्रात्पमान्तरितो ग्रह उच्चस्थाने एवातो बिम्बोर्ध्वगोलपरिधिप्रान्तस्य भूकेन्द्रात् दूरत्वम् = उच्चकर्ण+बिंबव्यासार्ध, एतद्व्यासार्धकृतगोलाध व ग्रहबिम्बं सदा भ्रमतीति, फलितम्, तेनायं परोच्चगोलः। एवं भूकेन्द्रादत्यासन्नस्थो ग्रहो नीचस्थाने भवति तत्रस्थासन्नबिम्बपालि भूकेन्द्रयोरन्तरं तु = नीचकर्ण -बिम्बव्यासार्ध, एतद्व्यासार्धकृतगोला-दूर्ध्वगत एव सदा ग्रहस्तेनायं परनीचगोलः।

चापीयजात्यत्रिभुजलक्षणम्-

मिथस्तिर्यक्स्थायोरैक्याच्चतुर्दिक्षु स्थिताश्च ये।
समसंज्ञाश्च ते कोणास्तद्भिन्ना विषमाभिधाः।।90।।
यत्कोणयुग्मं विषमं समस्त्वेकोऽस्ति तद्भवेत्।
त्रिज्यावृत्तत्रयोत्पन्नं त्रिकोणं जात्यसंज्ञकम्।।100।।

भाष्य- तीन वृहद्वृत्तों से उत्पन्न (बना हुआ) क्षेत्र जिसके तीन कोण होते हैं, वह विषम त्रिभुज होता है। परस्पर लम्बरूप में दो वृत्तों के मिलने पर उनसे बने कोण की समसंज्ञा अर्थात् समकोण संज्ञा होती है तथा इससे भिन्न अवस्था में मिलने पर वह विषम

नाम का होता है। तीन त्रिज्या वृत्तों से बनने वाले त्रिभुज के दो कोण विषम हो तथा एक कोण समकोण हो तो वह त्रिभुज जात्यसंज्ञक होता है।

समकोण पर स्थित दो भुजाओं के मध्य में चापात्मक कर्ण का चाप जात्यचाप होता है।

टिप्पणी- ये श्लोक सि.त. वि. के त्रि. प्रश्ना. के श्लोक-50-53 ही है।

संस्कृत- त्रिज्यावृत्तत्रयोत्पन्नं महद्वृत्तत्रयोत्पन्नम् विषमाभ्यामतुल्याम्याम्। समतः समाभ्याम्। स विषमं वा समम् त्रिभुजं भवेत्। तिर्यक्स्थयोर्लम्बरूपयोर्वृत्तयोरैक्यात् सम्पात्, समसंज्ञा समकोणसंज्ञकाः। तद्भिन्ना विषमाभिधम् स्यात्। यस्य त्रिभुजस्य दौकोणः विषमं तथा समकोणमेकोऽस्ति तद्भवेत् जात्यसंज्ञकम् त्रिभुजं। यस्य त्रिभुजस्य समकोणाश्रितौ भुजौ चापात्मकौ तयोर्मध्ये कर्णश्चापाजात्यम् चापात्मकः।

त्रिज्यावृत्तत्रयोत्पन्नं यस्य कोणत्रयं भवेत्।
विषमं त्रिभुजं तत्स्यात्.................।।

समकोणाश्रितौ यस्य भुजौ चापात्मकौ तयोः।
मध्ये चापात्मकः कर्णश्चापजात्यमतश्च तत्।।

◆ ◆ ◆

खगोलीय निर्देशांक पद्धतियाँ

किसी आकाशीय पिण्ड की आकाश में स्थिति को निर्देशित करने के लिए कुछ पद्धतियाँ भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धान्तग्रन्थों में विकसित की गई हैं, जो किन्ही विशिष्ट संदर्भों में उपयोगी होती हैं। ये चार पद्धतियाँ प्रमुख रूप में हैं।

(1) खगोलीय अक्षांश तथा रेखांश अथवा भोगांश (क्रान्तिवृत्त पद्धति)

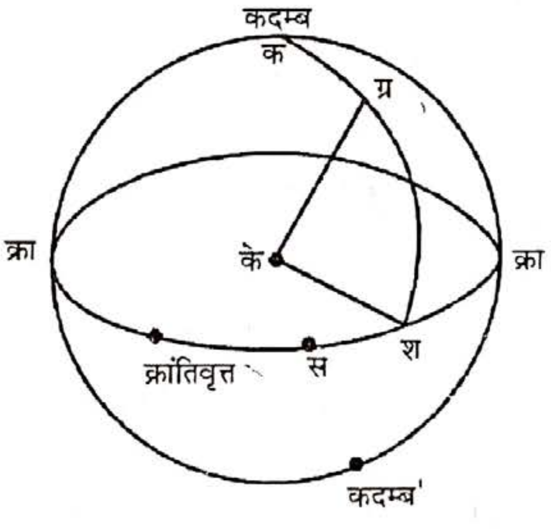
(2) विषुवांश तथा क्रान्ति (विषुवत्वृत्त पद्धति)

(3) दिगंश तथा उन्नतांश (क्षितिज पद्धति)

(4) होराकोण तथा क्रान्ति (याम्योत्तर पद्धति)

अब इनका एक–एक करके सूक्ष्म में वर्णन करते हैं।

(1) खगोलीय अक्षांश तथा रेखांश अथवा भोगांश (क्रान्तिवृत्त) पद्धति



चित्र में गोलाकार खगोल में माना कि ग्र कोई ग्रह का स्थान है। क्रान्तिवृत्त के दोनों कदम्ब स्थान पृष्ठीय केन्द्र हैं। कदम्ब प्रोतवृत्त क ग्र क्रान्ति वृत्त पर श स्थान पर मिलता है। कोणीय दूरी अर्थात् चाप ग्र श, जो कोण ग्र के श के तुल्य है, ग्रह का अक्षांश (Latitude) कहलाता है। यदि ग्रह उत्तर गोल में हो तो यह अक्षांश उत्तर होते हैं तथा दक्षिण में होने पर दक्षिण होते हैं। यदि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर हो तो ये शून्य होते हैं। यहाँ जो खगोलीय अक्षांश कहे हैं वह पूर्वोक्त ग्रह का शर ही है।

कोणीय दूरी स श जो क्रान्तिवृत्त पर मेष संपात से पूर्व की ओर मापी जाती है वह खगोलीय भोगांश कहलाते हैं अथवा खगोलीय देशांतर या रेखांश कहलाते हैं। यह 0^0 से 360^0 तक होते हैं। ये सायन होते हैं, लेकिन भारतीय पद्धति में निरयन की गणना की जाती है क्योंकि ग्रहों की गतियाँ स्थिर तारों के संदर्भ में मापी जाती है।

संस्कृत- यतः प्राचीनज्योतिर्विद्भः प्रायेण सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहाणां वा स्थितिर्गणिता, एते सर्वे च क्रान्तेवृत्तेऽथवा क्रान्तिवृत्तस्य सामीप्ये वर्तन्ते, अत एव तैः खगोलीयाक्षांशाः खगोलीय रेखांशाः प्रायुज्यन्त।

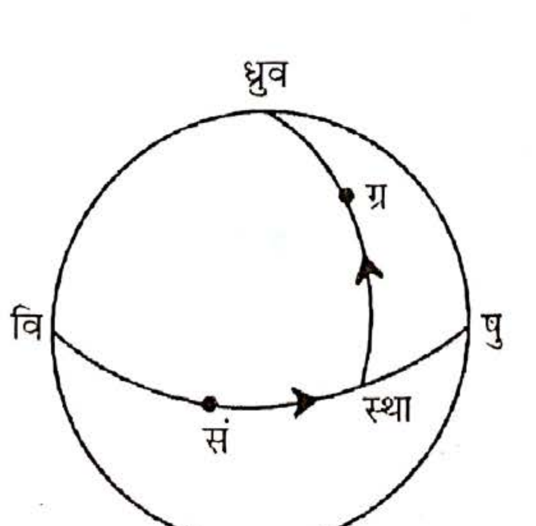
अस्यां पद्धत्यां प्रधानं महद्वृत्तं क्रान्तिवृत्तमस्ति। नैकानि कदम्बयोलग्नानि महद्वृत्तानि गौण महद्वत्तानि। प्रमुखगौणवृत्तं मेषसंपातप्रोतं कदम्बयोर्लग्न गौणमहद्वृत्तम्। प्रथमो नियामक खगोलीयरेखाशाः, भारतीय पद्धत्यां भोगांशाः क्षेत्रांशा वा, द्वितीयो नियामकश्च खगोलीयाक्षांशाः, भारतीयपद्धत्यां शराः, सन्ति। नक्षत्रप्रोतं कदम्बयोर्लग्नं गौणमहद्वृत्तं नक्षत्रकदम्बप्रोतमण्डलं कथ्यते।

खगोलीय रेखांशाः- क्रान्तिवृत्तमनु मापितं मेषसंपाताद् नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं खगोलीयरेखांशाः।

खगोलीयाक्षांशाः- नक्षत्रकदम्बप्रोतमण्डलमनु मापितं क्रान्तिवृत्ताद् ऊर्ध्वत्वं निम्नत्वं कोणप्रमापके खगोलीयाक्षांशाः।

(2) विषुवांश तथा क्रान्ति (विषुवत्वृत्त) पद्धति

ध्रुवप्रोतवृत्त जो आकाश स्थित ग्रह से होकर जाता है तथा विषुवद्वृत्त को मिलता है, मेष सम्पात से विषुवद्वृत्त पर स्थित उस मिलान बिन्दु तक की दूरी विषुवांश (Right ascension) कहलाते हैं तथा ग्रह से उस मिलान बिन्दु तक की ध्रुवप्रोत वृत्त में दूरी क्रान्ति कहलाती है। विषुवांश 0^0 से 360^0 तक होते हैं लेकिन इनको घटि पलादि में व्यक्त किया जाता है। इन विषुवांशों को 15 से विभक्त करने से प्राप्त घंटा मिनियादि होते हैं तथा 6 से विभक्त करने से घटिपलादि प्राप्त होते हैं। जब आकाशीय पिण्ड उत्तरगोल में होता है तब क्रान्ति उत्तर होती है तथा दक्षिणगोल में होने पर दक्षिण होती है। नाड़ीवृत्त पर समय की गणना की जाती है। चित्र में ध्रुव स्थान से ग्रह **ग्र** पर से होते हुए ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्त **वि सं स्था षु** को **स्था** स्थान पर मिलता है। सं नाडीवृत्त-क्रान्तिवृत्त का मेषसंपात स्थान है। सं स्था की दूरी ग्रह के विषुवांश तथा स्था ग्र तुल्य क्रान्ति होती है। इन दोनों के द्वारा ग्रह स्थान को आकाश में निर्देशित किया जा सकता है। विषुवांश की मेषसंपात से पूर्वदिशा की ओर गणना की जाती है।



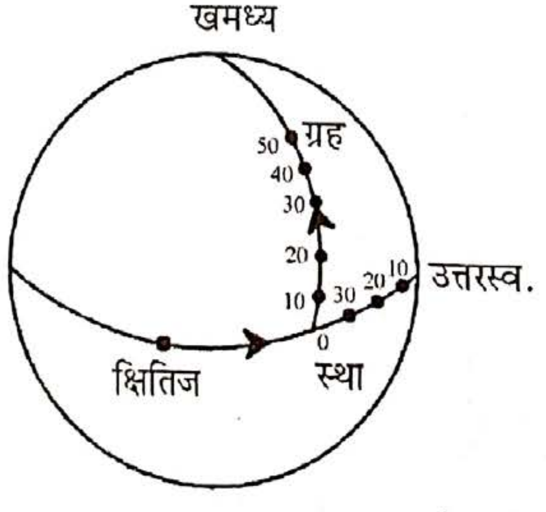
संस्कृत- अस्यां पद्धत्यां प्रधानं महद्वृत्त नाडीवृत्तमस्ति। गौणानि महद्वृत्तानि ध्रुवयोर्लग्नानि महद्वृत्तानि। प्रमुखगौणमहद्वृत्तं मेषसम्पातप्रोतं ध्रुवयोलग्नं महद्वृत्तमस्ति। प्रथमो नियामको विषुवांशा:, द्वितीयों नियामक: क्रान्त्यंशा कथ्यते। नक्षत्रप्रोतं ध्रुवयोर्लग्नं गौणमहद्वृत्त होरावृत्तनाम्ना प्रसिद्धम्।

विषुवांशा- नाडीवृत्तमनु मापितं मेषसंपातान्नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं विषुवांशा:। अर्थाद् नाडीवृत्तस्य होरावृतसंपातमेषसम्पातमध्यवर्तिनो वृत्तांशा विषुवांशा:। विषुवांशानां गणना मेषसंपातात् पूर्वदिशायां भवति। विषुवांशा: कोणप्रमापके 0^0 अंशात्प्रारभ्य 360 अंशपर्यन्तम्, होराप्रमापके 0 होरात: प्रारम्भ 24 होरापर्यन्तं गण्यन्ते।

क्रान्त्यंशा:- होरावृत्तमनु नाडीवृत्ताद्नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं क्रान्त्यंशा: कथ्यन्ते। अर्थाद् होरावृत्तस्य नक्षत्र-होरा-वृत्तनाडीवृत्तसम्पात-मध्यवर्तिनो वृत्तांशा: क्रान्त्यंशा:।

(3) दिगंशोन्नतांश पद्धति (क्षितिजवृत्त पद्धति)

इस पद्धति में क्षितिजवृत्त प्रधानवृत्त होता है तथा उत्तर समस्थान होता है। आकाश स्थित ग्रह से होकर खस्वस्तिकप्रोतवृत्त जहाँ पर क्षितिज से मिलता (संपात) है, उत्तरसमस्थान से उस संपात बिन्दु तक की दूरी को दिगंश कहते हैं तथा संपात स्थान से ग्रह तक खस्वस्तिक प्रोतवृत्त में दूरी उन्नतांश होती है। उत्तर समस्थान से पूर्व की ओर दिगंश मापे जाते हैं तथा ये 0^0 से 360^0 तक होते हैं कभी-कभी दिगंश पश्चिम की ओर भी मापे जाते हैं, लेकिन तब विशेष रूप से उसका निर्देश किया जाता है। ग्रह के उन्नतांश कोणीय माप होती है, जो शीर्षवृत्त की ओर मापे जाते हैं। ये 0 से 90^0 तक होते हैं तथा क्षितिज के दोनों ओर मापे जाते हैं। ये उन्नतांश दृष्य के स्थान तथा ग्रह की दैनिक गति पर निर्भर करते हैं। अर्थात् उनके अनुसार ये बदलते रहते हैं। भारतीय पद्धति में दिगंश दक्षिणसमस्थान से मापे जाते हैं तथा पूर्वापरवृत्त प्रमुख गौणवृत्त महद्वृत्त होता है।



संस्कृत-अस्यां पद्धत्यां प्रधानं महद्वृत्तं क्षितिजमस्ति। गौणानि महद्वृत्तानि नैकानि खस्वस्तिकप्रोतोर्ध्वाधरवृत्तानि। प्रमुखगौणमहद्वृत्तं प्रायेण दक्षिणसमस्थानप्रोतोर्ध्वाधरवृत्तं

(याम्योत्तर वृत्तम्) अस्ति। भारतीयपद्धत्यां पूर्वसमस्थानप्रोतोर्ध्वाधरवृत्तम्, अर्थात् पूर्वापरवृत्तं प्रमुखगौणमहद्वत्तमस्ति। प्रथमो नियामको दिगंशाः, द्वितीयो नियामक उन्नतांशाः कथ्यते।

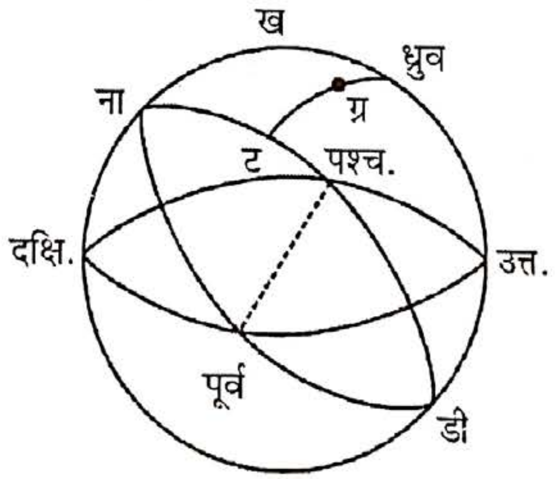
उन्नतांशाः– दृङ्मण्डलमनु मापितं क्षितिजाद् नक्षत्रस्य ऊर्ध्वत्वं निम्नत्वं कोणीय-प्रमापके उन्नतांशाः। अर्थाद् दृङ्मण्डलस्य नक्षत्र-क्षितिजदृङ्मण्डसंपातमध्यवर्तिनो वृतांशा उन्नतांशाः।

दिगंशाः– क्षितिजमनु मापितं दक्षिणसमस्थानाद् नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं दिगंशाः। अर्थात् क्षितिजस्य दृङ्मण्डलयाम्यसमस्थान-मध्यवर्तिनो वृतांशा दिगंशाः।

पद्धतेर्गुणावगुणाः– पद्धतिरियमतिसरला। यदि कोऽपि जनो जानाति यद् नक्षत्रविशेषो दक्षिणसमस्थानत इयमात्रकं पूर्वम्, क्षितिजादियन्मात्रकमूर्ध्वं वर्तते अर्थाद् दिंगशा उन्नतांशाः विदिताः तर्हि स प्रथमं दक्षिणाभिमुखो भवति, तत आत्मानं भ्रामयित्वा इष्टदिशाया आभिमुख्यं भजते, ततः शिरो विदितांशैरुन्नमति, नक्षत्रञ्च पश्यति।

परन्तु प्रत्येकं स्थानस्य विभिन्नानि क्षितिजानि खस्वस्तिक स्थानानि च भवन्ति। अत एव स्थानविशेषे प्राप्ता नियामकाः स्थानान्तराय अनुपयुक्ताः। नक्षत्राणि काले-काले परिवर्तनं भजन्ते। अत एव स्थानविशेषे विदिता अपि नियामकाः काले भिन्ना भवन्ति। अत एव देशकालभेदादियं पद्धतिर्नाधिकमुपयुक्ता।

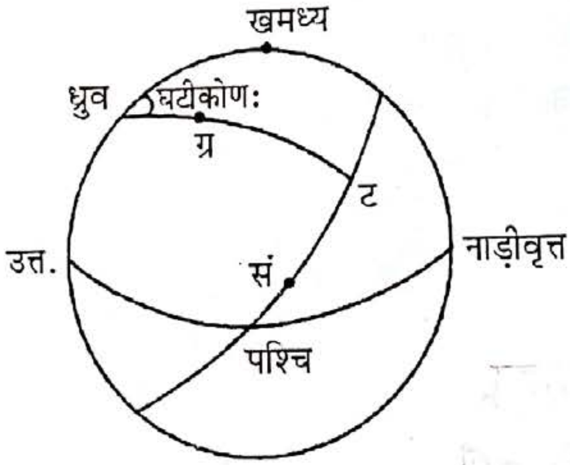
(4) होराकोणक्रान्त्यंशपद्धति (याम्योत्तरवृत्त पद्धति)



इसमें प्रमुख गौणवृत्त दर्शक का याम्योत्तरवृत्त होता है। चित्र में यह उ ध्रु ख ना द है। तथा ना ट पश्च डी नाडीवृत्त है। ध्रुव स्थान से ग्रह **ग्र** पर होकर गत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त को **ट** बिन्दु पर संपात करता है। कोणीय दूरी **ग्र ट** जो नाड़ी वृत्त से ध्रुव प्रोत वृत्त में ग्रह तक मापी जाती है ग्रह की क्रान्ति होती है। इसी प्रकार कोणीय दूरी ना ट = कोण ना ध्रु ट को घटीकोण कहा जाता है; क्योंकि नाड़ीवृत्त पर समय की गणना की जाती है। अतः किसी तारे या ग्रह का घटीकोण, स्वदेश के याम्योत्तर वृत्त तथा ग्रह से गत ध्रुवप्रोतवृत्त (क्रान्तिमापी वृत्त) के मध्य का कोण होता है। यह याम्योत्तरवृत्त से पश्चिम (वर्त्ति) की ओर मापा जाता है। यदि किसी संदर्भ में इसको पूर्ववर्ति मापा जाता है तो उसको स्पष्ट रूप

से निर्देशित किया जाता है। घटी कोण 0 अंश से 360 अंश तक होता है। यह ग्रह की दैनिक गति के अनुसार प्रभावित होता है लेकिन इसकी क्रान्ति प्रभावित नहीं होती है, वह स्थिर ही रहती है, क्योंकि ग्रह अपने अहोरात्रवृत्त में ही रह कर भ्रमण करता है। घटीकोण दृष्य के स्थान के अनुसार बदलता है। घटीकोण को घटियों अथवा घंटामिनिटादि में मापा जाता है। प्रत्येक 15 अंश एक घंटे के तुल्य होते हैं अथवा प्रत्येक 6 अंश एक घटी के तुल्य होते हैं।

संस्कृत- पद्धतिरियं पूर्ववत् विषुवांशक्रान्त्यंश पद्धतिः अनुरूपं केवलम् प्रमुखगौणवृत्तमत्र दर्शकस्य याम्योत्तरवृत्तमस्ति। अत एव नाडीवृत्तमनु मापितं याम्योत्तरवृत्त-नाडीवृत्तसम्पाताद् ग्रह-नक्षत्रविशेषस्य कोणीयान्तरं होराकोणः। याम्योत्तरवृत्तस्य द्वे शाखे- प्रथमायां शाखायां खस्वस्तिकयुक्तयाम्योत्तरवृत्तार्धः, द्वितीयाश्च पातालस्वस्तिकायुक्तयाम्योत्तर-वृत्तार्धः। होराकोण याम्योत्तरवृत्तापेक्षित्वात् स्थानपरिवर्तनात् परिवर्तन्ते। भूगोलविषयकरेखांश-वदेषां गणना 'ग्रिनविचस्थहोराकाणेन' क्रियते।



◆ ◆ ◆

गोलसंबंधी कुछ विशेष निष्कर्ष

(1) वसंतसंपात (विषुव) 21 मार्च के पास जब सूर्य वसंतसंपात पर होता है तब उसके विषुवांश शून्य तथा क्रान्ति भी शून्य ही होती है। पुनः 21 सितम्बर के पास जब सूर्य शरदसंपात (विषुव) पर होता है तब उसके विषुवांश= 180 तथा क्रान्ति शून्य होती है।

(2) सूर्य जब उत्तरायन अन्त बिन्दु अर्थात् ग्रीष्म (कर्क) संक्रान्ति पर होता है तब उसके विषुवांश 6 घंटे तथा क्रान्ति $23\frac{1}{2}$ (स्वल्पांतर) के तुल्य होती है तथा जब दक्षिणायन अन्त बिन्दु अर्थात् शरद (मकर) संक्रान्ति पर होता है विषुवांश 18 घंटे तथा क्रान्ति $23\frac{1}{2}$ (स्वल्पांतर) के तुल्य होती है।

(3) मेषसंपात बिन्दु पर किसी भी ग्रह के खगोलीय अक्षांश, रेखांश, विषुवांश तथा क्रान्ति सभी शून्य के होते हैं।

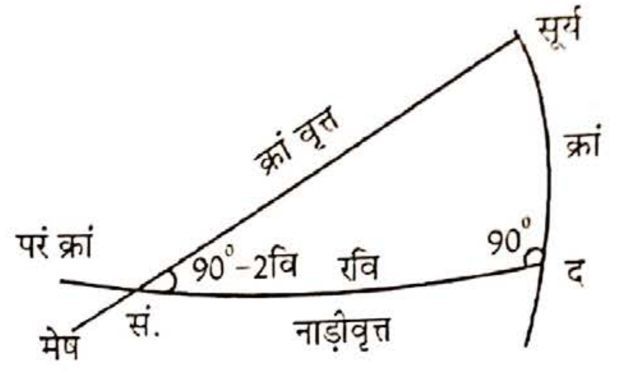
(4) सूर्य के विषुवांश जब 6 घंटे होते हैं तब वह ग्रीष्म संक्रान्ति पर होता है तथा तब उसके खगोलीय अक्षांश तथा रेखांश क्रमशः 0 तथा 90 अंश होते हैं। इसी प्रकार जब सूर्य के विषुवांश 12 घंटे होते हैं तब वह तुलासंपात पर होता है तथा तब उसके खगोलीय अक्षांश तथा रेखांश 180 अंश तथा 0 अंश होते हैं।

(5) जब किसी नक्षत्र की क्रान्ति (δ) स्वदेश के अक्षांश (ϕ) से अधिक होती है जब उसके विषुवांश, स्वयाम्योत्तरवृत्त के एक ओर से दूसरी ओर तक कोज्या क्रां ÷ कोज्या अक्षांश के तुल्य अंशों के तुल्य दोलन करते हैं।

(6) सूर्य के विषुवांश तथा क्रान्ति तथा परमक्रान्ति के मध्य में सदा,

$$\frac{\text{ज्या क्रां}}{\text{कोज्या क्रां}} = \frac{\text{ज्या परंक्रांति}\times\text{ज्या विषुवांश}}{\text{कोज्या परंक्रांति}}$$; संबंध रहता है।

(7) परमक्रांति का मान ज्ञात करने के लिए सूर्य की क्रान्ति (δ), कर्क संक्रान्ति पर ज्ञात करके, परं संक्रान्ति = क्रां+वि^{2}. ज्या 2 क्रां सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं। यहाँ, 2 वि, वे अंश है जितने सूर्य के विषुवांश 90 अंश से अल्प रहते हैं, अर्थात् सूर्य के विषुवांश = 90−2वि हैं।



(8) यदि किसी शंकु की 'प' छाया की लम्बाई किसी विषुव (मेष या तुला) संपात दिन के मध्याह्न पर होती है तथा कर्क संक्रान्ति के दिन उसी शंकु की छाया की लम्बाई 'छ' हो, जब सूर्य सममण्डल में हो तो–

प= छ ×स्पर्शज्या ψ स्पर्शज्या अक्षांश, समीकरण होता है।

$$\text{यहाँ ज्या } \psi = \frac{\text{ज्या पर क्रां}}{\text{ज्या अक्षांश}}$$

(9) किसी नक्षत्र का नाक्षत्रकाल (Sidereal Time) = नक्षत्र के विपुवांश+ नक्षत्र का घटी कोण

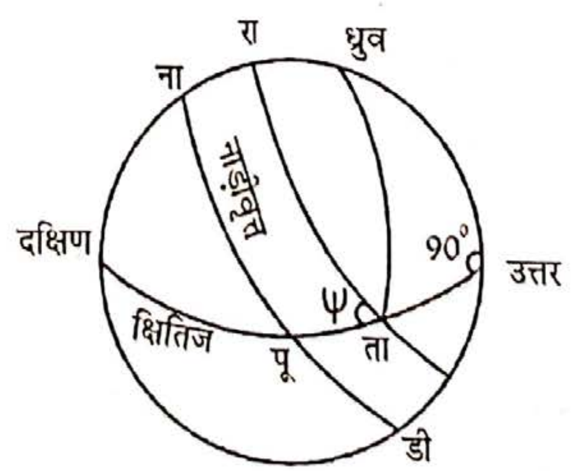
(10) किसी तारे के लिए (i) कोज्या घटीकोण = –स्पर्शज्या अक्षांश× स्पर्शज्या क्रांति (ii) ज्या क्रां = कोज्या अक्षांश ×कोज्या दिगंश

(11) 45^0 अक्षांश स्थान पर कोई तारा यदि उत्तर-पूर्व में उदित होता है तो उसकी क्रान्ति 30^0 होती है।

(12) यदि कोई तारा क्षितिज पर उदित होते समय ψ कोण बनाता है तो कोज्या

$$\psi = \frac{\text{ज्या अक्षांश}}{\text{ज्या क्रांति}}$$; समीकरण होता है।

कोण ध्रु ता रा = 90^0 है, तथा कोण ध्रु ता उ = 90–ψ है।



(13) यदि किसी अक्षांश पर सूर्य मध्याह्न में जितने घटी पूर्व उदित होता है उससे अगले दिन उससे 'म' मिनिट पश्चात् उदित होता है। तो उन दिनों उदय होने वाले स्थानों के मध्य में दूरी मिनिटों में = $\frac{15 \text{ म कोज्या}^2 \text{ क्रांति}}{\text{ज्या अक्षांश}}$; यहाँ क्रान्ति प्रथम दिन के सूर्य की लेनी है।

(14) संध्या का प्रकाश सूर्य के क्षितिज से 18 अंश नीचे जाने तक रहता है। इसी प्रकार जब वह 18 अंश क्षितिज से नीचे प्रात: काल में रहता है तब प्रात: कालीन संध्या का प्रकाश आरम्भ होता है। इन दोनों ही स्थानों पर सूर्य की खमध्य से दूरी $90+18^0 = 108^0$ होती है।

(15) किसी स्थान पर संध्याप्रकाश सम्पूर्ण रात्रि काल में रहे, ऐसी स्थिति के लिए, स्वदेश के अक्षांश > 72− सूर्य क्रांति। अर्थात् ऐसी परिस्थिति स्वदेश के अक्षांश $48\frac{1}{2}$ अथवा इससे अधिक होने चाहिये। क्योंकि सूर्य की परमक्रांति $23\frac{1}{2}$ अंश के आसन्न रहती है, अत: $72-23\frac{1}{2} = 48\frac{1}{2}$ अंश।

(16) जब तक सूर्य की क्रांति 18 अंश से अल्प रहती है तब तक सभी स्थानों पर संध्याप्रकाश काल सहित दिनमान 12 घंटे तुल्य होता है।

(17) विषुव संपातों पर विषुवत्वृत्त पर संध्याप्रकाश 1 घंटा 12 मिनिट तुल्य समय तक होता है।

(18) किसी स्थान पर के उन्नतांश तथा दिगंश निम्नलिखित सूत्रों द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं। यथा−

(i) ज्या उन्नतांश = ज्या अक्षांश ×ज्या क्रांति+ कोज्या अक्षांश×कोज्या क्रांति×कोज्या घटी कोण

(ii) ज्या क्रांति = ज्या अक्षांश ×ज्या उन्नतांश+ कोज्या अक्षांश×कोज्या उन्नतांश × कोज्या दिगंश।

◆ ◆ ◆

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	पृष्ठ सं.
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरुद्धृत्तना	53
अथार्धान्यहोरात्रवृत्तानि चोन्मडलोर्ध्वं	51
अल्पाधिकं तत्र निशाप्रमाणं क्रमात्	51
अवनौ गगनं समन्ततः सततं	56
अविदितगणितो न वेत्ति गोलं	1
अविदितपदलक्ष्यो वावदूकोऽपि	1
आदौ शनिर्गुरुस्तस्मात्ततो	6
इष्ट्यङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं	15
इष्ट्यन्त्यकैवं क्षितिजीवया च	49
उच्चनीचाभिधौ कर्णौ	56
उडुग्रहाणां भ्रमणं न तुल्यं सर्वत्र	1
एवं समाख्यचिह्नाद्यत्	32
एवं खमध्यखेटर्क्षोपरिगं	38
एवं भगोलके वृत्तं	31
एवं विषुवती छाया	46
एवमाकाशगोलास्ते पवनाख्या	5
ऐक्यं दिगैक्येऽन्तरकं विभेदेचैवं	40
कदम्बान्नवत्यंशैर्यत्	26
कार्यो ध्रुवाभ्यामिह खाङ्कभागैर्वृत्तं	24
क्रमादेकद्वित्रिज्यास्तच्चापानि	54
क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा	49

श्लोक	पृष्ठ सं.
खण्डं तदूर्ध्वं समवृत्तशङ्कोर्यत्	53
खेटापमज्यया निघ्नी	28
गोलोपरिमहद्वृत्तद्वयस्यान्तर्गतं	5
ग्रहाणां गोलकाः सप्त	7
दृग्वृत्तगार्कोन्नतभागजीवा	40
दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नसंस्थं	38
चक्रांशकाङ्के क्षितिजाख्यवृत्ते	47
चलग्रहपरक्रान्तिज्ययोराहतिरुद्धृता	28
तच्चापं तु स्फुटा क्रान्तिः	28
ततोऽक्षभागैर्ध्रुवचिह्नमूर्ध्वं	23
तत्सावनं चार्कवशात् स्थिरर्क्षवशात्	51
तथा क्रान्तिज्यका	49
तथापमांशा ग्रहगोलदिक्का	47
तथैव कोटिः समवृत्तशङ्कुरग्रा	53
तथैव यद्भूमिजपृष्ठवृत्तस्पर्शेन	36
तद्योगचिह्नान्नवतिप्रमांशैर्वृत्तं	23
तावद्ब्रह्माण्डगोलोऽयं स्वर्णाभोऽ-	55
तेषां च कोट्युद्भवशिञ्जिनी	40
त्रिज्यागुणे हारहृते	34
त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः	54
दक्षिणोत्तररेखायां सा	46
दोः कोटिजीवारहिते त्रिभज्ये	16
द्युरात्रिवृत्तं क्षितिजोर्ध्वगं यत्	51
द्यूरात्रवृत्तक्षितिजैक्यके	37
द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां	16

श्लोक	पृष्ठ सं.
ध्रुवमध्याद् वृहद्वृत्तं	12
नक्षत्रग्रहयोगेषु	43
नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ	25
नाड़ीभवृत्तसम्पातात्	37
नीलाम्बरीयक्षितिजस्वरूपासक्तं	36
परापमांशाश्च यथा	27
परोच्चपरनीचाख्यगोलाः	7
परोच्चमान्दश्रवणान्तरेण	56
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं	43
पूर्वापरस्वस्तिकसक्तवृत्तं	34
पूर्वापरस्वस्तिकसन्निबद्धं	36
पूर्वापरोदयास्ताख्यसूत्रयोरन्तरं	49
प्रयुतघ्ना वरीवर्ति यस्य	55
प्राग्भागके गर्भकुजे विलग्नो	22
प्रोक्तो योजनसंख्यया	17
भमण्डलस्थग्रहगोलदिक्काश्चैवं	47
भवेन्नाडिकाद्यं च तद्युक्तहीनाः	50
भास्करेऽत्र सममण्डलोपगे	47
भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना	52
मिथस्तिर्यक्स्थायोरैक्याच्चतुर्दिक्षु	56
मृगाननात्संचलनं भषट्कं	25
मृदम्ब्वग्न्यनिलाकाशपिण्डोऽयं	9
यत् पूर्वापरभावेन	43
यत्कोणयुग्मं विषमं समस्त्वेकोऽस्ति	56
यत्त्रिज्यावृत्ततस्तिर्यक्स्थित-	11

श्लोक	पृष्ठ सं.
यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रा-	43
यथा कदम्बद्वयतो	28
यथैव खेटः परिदिग्भ्रमेण	45
यद्वदिन्दुरहिता न शर्वरी भाति	1
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि	21
याम्यध्रुवात् कदम्बस्य	26
याम्योत्तर स्वे स्वकुजं तु यत्र	32
याम्योत्तरं स्वदेशस्थं	17
याम्योत्तरं प्रागपरं च कोणाभिधं	10
यांम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं	18
ये प्राक्परस्थे च तयोर्निबद्धं	37
ये याम्यसौम्यायनसंज्ञके	25
येऽनेत लङ्कोदयकालिकास्ते	22
रविचिह्नात् त्रिभे वृत्तं त्रिज्यया	41
रेखाभिधं तन्निजयाम्यसौम्य-	19
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा	52
विनोर्ध्वाश्रयमन्योऽस्ति	15
विवृत्तमन्दस्फुटगं च बिम्बं	35
विषुवत्क्रान्तिवृत्तैक्यात्	30
विषुवत्समवृत्तान्तस्तदवृत्तौ	41
विष्कम्भोपरिवृत्तार्द्धे भ्राम्यमाणे	4
वृत्तमध्यस्थिता या स्यादृजुरेखा	3
वृत्तानि खाङ्कैर्विहितानि तानि	19
वृत्ते च ये स्वस्वनिरक्षदेशाभ्यां	32
व्यतिपातोऽयनभेदे	52

श्लोक	पृष्ठ सं.
व्यासार्धान्तरिता केन्द्रात्	2
षड्भान्तरेणात्र मिथः स्थिताभ्यां	28
दृष्टिमण्डलभवा लवाः	47
सत्रिभग्रहजद्युज्योद्धृता	28
सदा सौम्यगोले निरक्षीयभूजात्	50
समाख्यनाडीवलयान्तराले	33
स्थानविम्बद्युरात्राख्यवृत्तान्तरे	35
स्थिरः परेशशक्त्यैव सर्वगोलादधः	9
स्वदेशगं यद्ध्रुवयोर्विलग्नं	31
स्वदेशमेर्वन्तर योजनैर्यल्ल-	18
स्वभूमिपृष्ठोर्ध्वगदृष्टिचिह्नात्	36
स्वेषुसंस्कारतः स्पष्टो भवेत्	28

◆ ◆ ◆

'**गोलपरिभाषा**' नाम से जो ग्रन्थ प्रकाशित है तथा पाठ्यक्रम में स्वीकृत है, यह विभिन्न सिद्धान्त ग्रन्थों से, गोल के आधार भूत ज्ञान से संबंधित पारिभाषिक श्लोकों को संकलित करके बनाया गया लघु ग्रन्थ है। मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में उनको क्रमशः व्यवस्थित कर के लिखा है, उसमें पूर्व में प्रकाशित कुछ अधूरे श्लोकों को पूर्णरूप दिया है तथा कुछ अन्य आवश्यक परिभाषाओं को इसमें सम्मिलित करके इसको पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया है। श्लोकों की संख्या को पूर्ण शतक कर दिया गया है।

श्लोकों के शुद्ध तथा पूर्ण अर्थ स्पष्ट करके लिखे हैं तथा उनकी संस्कृत में भी व्याख्या हिन्दी के साथ पूर्ण विस्तार तथा स्पष्ट रूप में की है, जिससे उन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान स्पष्ट तथा सरल रूप में हो सके। पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों में इनके अर्थ तथा व्याख्यायें कई स्थानों पर अशुद्ध की गई हैं इन्हें सही अर्थ तथा सही स्वरूप में इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। गोल संबंधी अन्य अतिरिक्त सामग्री इसमें नई जोड़ी गई है।



पं. सत्यदेव शर्मा का जन्म दिनांक 15-08-1948 को जयपुर (राजस्थान) में हुआ। पं. सत्यदेव शर्मा ने M.Sc. Maths. (सांख्यिकी तथा आधुनिक एस्ट्रोनॉमी विशेष विषय के साथ) करने के पश्चात राष्ट्रीयकृत बैंक से अधिकारी पद से मई 2001 में एच्छिक सेवानिवृति लेकर भारतीय ज्योतिष के अध्ययन- लेखन में स्वयं को समर्पित किया। अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा सम्मानित पं. सत्यदेव शर्मा जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को लेखन का माध्यम बनाकर भारतीय उच्च तथा श्रेष्ठ ज्ञान को अधिकाधिक पाठकों के समक्ष विषय को सरल बनाकर प्रस्तुत किया। भारत के एतिहासिक तथा सार्वभौम ज्ञान के प्रतीक, ''आर्यभटीयम्, ''पञ्चसिद्धन्तिका'', ''सिद्धान्त-पञ्चकम्'', ''सिद्धान्त-शिरोमणिः'', ''केतकी-ग्रहगणितम्'', ''करण-कुतूहलम्'', ''खण्डखाद्यकम्'', ''सूर्यसिद्धान्तः'', ''सिद्धान्तशेखरः'' जैसे विश्व-विख्यात ग्रंथों की हिन्दी में विस्तृत व्याख्या लिखी तथा इनमें अन्य विख्यात ग्रंथों जैसे लघु/महाभास्करीय (भास्कर), त्रिशतिका (श्रीधर), 'गणितसारसंग्रह (महावीर), 'गणितकौमुदी (नारायण-पण्डित), 'लघु-मानसम् (मुञ्जाल), लीलावती (भास्कर) आदि से उद्धरण दिये गये हैं। स्वकृत बृहद् भारतीय कुण्डली विज्ञान, ज्यातत्वविवेक, गूढार्थहोरा-सिद्धान्त' ग्रंथों की रचना की। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों की टीकायें की तथा शोध कार्य किये जिनको सर्व सुलभता के लिये व्याख्याग्रंथों तथा स्वकृत ग्रंथों में ही उद्धृत कर दिया गया।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली